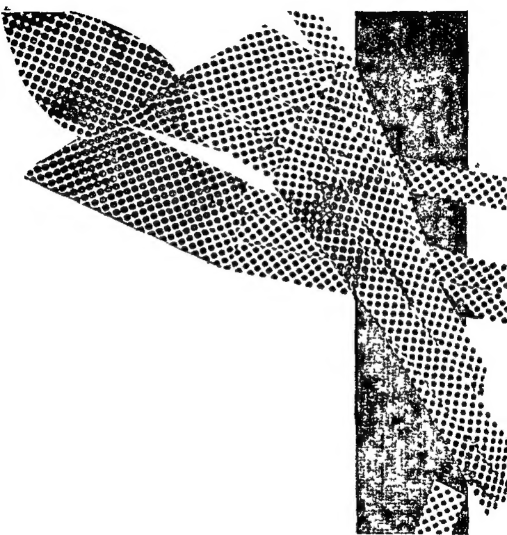
मध्यकालीन बोध के आधुनिक सन्दर्भ



सन्मार्ग प्रकाशन
16 यू० बी० बंग्लो रोड, दिल्ली-110007

मध्यकालीन बोध के आधुनिक संदर्भ

डॉ० बलराज शर्मा

क्रम

1

आधुनिक सन्दर्भ में रामचरितमानस की सार्थकता

1947 अर्थात् स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व यह पूर्णरूपेण विश्वास किया जाता था कि हमारी अधोगति का एकमात्र कारण विदेशी दासता ही है और जैसे ही हम परतन्त्रता की शृंखलाओं से मुक्त होकर पक्षियों के समान स्वाधीनता रूपी आकाश के मुक्त वातावरण में सांस लेने लग जाएंगे, हमारी सारी आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक व्याधियों, का उन्मूलन हो जायेगा। कितने, उत्साह, हर्ष तथा उल्लास से हमने लोमहर्षक बौद्धिक, मानसिक तथा शारीरिक अत्याचारों तथा यन्त्रणाओं को सहते हुए अकथनीय एवं अविस्मरणीय बलिदानों द्वारा स्वतन्त्रता की देवी का वरण किया इसका इतिहास साक्षी है। परन्तु स्वाधीनता के 35 वर्ष पश्चात् भी आज हमारे 'राम राज्य' सम्बन्धी स्वर्णिम भविष्य के सपने एक दूरारूढ कल्पना ही बनकर रह गये है। और अमा की भयकर अधकारमयी काल-रात्रि रूपी निराशा गर्त में निमज्जित जनसाधारण यह कहने को विवश हो रहे हैं कि इससे तो पराधीनता का युग अच्छा था जब जीवनोपयोगी वस्तुओं के मूल्यों के गिरने और बढने के साथ खाद्य पदार्थों का आविर्भाव और तिरोभाव नही होता था, जब प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता राज्यों के भाषा तथा सीमा सम्बन्धी विवाद, वर्ग विग्रह, चोरबाजारी, नैतिक पतन, भक्ष्याभक्ष्यविवेक अनुशासनाभाव हमारे राष्ट्रीय जीवन को विपाक्त बनाकर उसे दूषित पंकिल एवं हेय नही बना रहे थे। सन्दानित व्यक्तियो का पाश से मुक्त होकर पुन निगडबद्ध होने के लिए सोचना, चाहे क्षणिक भावुकता में ही वे ऐसा क्यों न कह रहे हो, हमारी आज की शासन-व्यवस्था पर सबसे करारा तीक्ष्ण तथा झकझोर देने वाला प्रहार है। कारण स्पष्ट है। आजकल चारो ओर भीषण असन्तोष की अग्नि धू-धू कर जल रही है। कहीं छात्र गुरुजनो की अवमानना कर रहे हैं और उनकी हत्या करने से भी नहीं कतराते, कहीं यूनिवर्सिटियो को आग लगाई जा रही है, कहीं प्रान्तीय सीमाविवादो तथा भाषायी समस्याओ के समाधान के लिए निरीह

व्यक्तियों के घर-बार जलाए जा रहे हैं और उन्हें मृत्यु के घाट उतारा जा रहा है, कहीं महगाई की समस्या का हल करने के लिए जनता एकजुट होकर सरकारी गोदामों तथा तथाकथित 'ब्लैकियों' की दुकानों को लूट रही है, कहीं सरकारी कर्मचारी, जिन्होंने जनता की सेवा का व्रत लिया है, विशाल प्रदर्शन करते हुए दफा 144 का उल्लंघन करते हुए लाठियां खा रहे हैं और बन्दी बनाये जा रहे हैं, कहीं रेल कर्मचारी रेल का पहिया जाम करके यातायात के साधन ठप्प करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से महगाई तथा भुखमरी बढ़ाने में सहायक बन रहे हैं, कहीं डाक्टर और परिचारिकाएं मृत्यु की बाट जोह रहे रोगियों को देखने से इन्कार कर रहे हैं कहीं मजदूर सरकारी तथा गैर सरकारी औद्योगिक संस्थानों में हड़तालों द्वारा उत्पादन पर रोक लगाकर अभावों के विरुद्ध अपना रोष प्रकट कर रहे हैं।

आज की समस्याएं अधोलिखित हैं —

(1) धन लोलुपता	(2) कामुकता
(3) स्वार्थान्धता	(4) प्रान्तीयता
(5) क्षेत्रीयता	(6) चोरबाजारी
(7) काला धन	(8) रिश्वतखोरी
(9) अनुशासनहीनता	(10) कथनी और करनी में अन्तर
(11) मदिरासक्ति	(12) धार्मिक वैमनस्य
(13) वर्गगत विद्वेष	(14) चारित्रिक पतन
(15) दल बन्दी	(16) शासन में भ्रष्टाचार
(17) सत्तालोलुपता	(18) भाईभतीजावाद
(19) अराजकता/अव्यवस्था	(20) सत्ता का दुरुपयोग
(21) अनास्था	(22) पारिवारिक विशृंखलता

मोटे तौर पर इन समस्याओं को हम चार वर्गों में बांट सकते हैं —

(क) चारित्रिक या सदाचार सम्बन्धी
(ख) धार्मिक
(ग) सामाजिक
(घ) राजनीतिक

क्रान्तदर्शी तुलसी ने भी कलिकाल निरूपण में सामाजिक व्यवस्था का मूलोच्छेदन करने वाली व्याधियों का अपने शब्दों में इस प्रकार चित्रण किया है —

(1) नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल (7/96 ख)।
(2) कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ।
दम्भिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किए बहु पंथ (7/97)

(3) द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन (7/97/1)
(4) पंडित सोई जो गाल बजावा (8/97/2)
(5) सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।
(6) निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी, कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।
जाकें नख अरु जटा बिसाला, सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला। (7/97/3)
(7) असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्यते कलिजुग माहिं। (7/97/4)
(8) जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ। (7/98क)
(9) नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं। (7/98 ख)।
(10) सब नर काम लोभ रत क्रोधी। (7/98/2) (7/98/1)
(11) मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।
(12) गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा। (7/98/4)
(13) ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥ (7/98/3)
(14) पर त्रिय लंपट कपट सयाने, मोह द्रोह ममता लपटाने। (7/99/क)
(15) बहु दाम सवाँरहिं धाम जती।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। (7/99/1)
(16) नृप पाप परायन धर्म नहीं। (7/100/3)
(17) कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै। (7/100/3)
(18) सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड। (7/100/5)
(19) तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान। (7/101क)
(20) अबला कच भूषन......... (7/101/ख)
(21) लघु जीवन संबतु पंच दसा। (7/101/1)
(22) नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा। (7/101/2)
(7/101/3)

(23) इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता।
(7/101/4)

(24) सब पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे।
(7/101/5)

इस सबको पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी ने कलिकाल निरूपण के ब्याज से आजकल के समाज का ही चित्र खींचा है।

रामराज्य के वर्णन द्वारा तुलसी ने आदर्श सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप का उदाहरण दिया है जो अधोलिखित उद्धरणो मे द्रष्टव्य है —

(1) राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।
(7/19/4)

(2) सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
(7/20/1)

(3) अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना······ (7/20/3)

(4) सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
. . ., सब कृतग्य नहिं कपट सयानी। (7/20/4)

(5) सब उदार सब पर उपकारी,······ ·
एक नारि व्रत रत सब झारी,· ······ (7/21/4)

उपरिलिखित आदर्श सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार स्थापित की जा सकती है इसका प्रतिपादन तुलसी ने रामचरितमानस मे जिस ढग से किया है उसका यहा विश्लेषण किया गया है।

सर्वप्रथम हमे यह समझ लेना चाहिए कि रामचरितमानस, जिसकी रचना तुलसी ने 'स्वान्त सुखाय', स्वान्तस्तम शान्तमे' और 'राम की अनपायनी भक्ति' को, जिसके द्वारा मानव इह लोक मे आधि-व्याधि से मुक्त होकर परलोक मे चारो मुक्तियो मे से एक अनायास प्राप्त कर सकता है, सुलभ बनाने के लिए ही, अपने पूर्ववर्ती सद्ग्रन्थो का, जिनमे वेद, उपनिषद्, पुराण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत (गीता) छह शास्त्र, प्रसन्नराघवादि नाटक, राम सम्बन्धी महाकाव्य आनन्दरामायणादि अन्य रामायण ग्रन्थ परिगणित किये जा सकते हैं, सार अपने में समाहित किये हुए हैं जैसाकि स्वय तुलसी ने उद्घोषित किया है "नाना पुराण निगमागम सम्मत यद रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।" कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

सामवेद —आते वत्सो मनो यमत् परमाश्चित सधस्थात्;
अग्ने त्वा कामये गिरा (मत्र 8)

तुलसी —तुलसी ऐसा ध्यानधर, जस बियान की गाइ।
मुखते तिनका मुस भखै, मन राखै बाछाइ ॥
कठोपनिषद् —अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्ण ।
तुलसी —बिनुपद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ·· ··
मेघदूत —धूम ज्योति सलिल मरुता सन्निपात क्वमेघ ।
तुलसी —सोइ जल अनल अनिलसघाता।
महारामायण —निर्वर्णं राम नामेद केवल च स्वराधिकम् ।
सवैपा मुकुट छत्रे मवारी रेफ व्यजनम् ।
तुलसी – एक छत्र इक मुकुट मनि, सब बरनत पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम क, बरन बिराजत दोउ ॥
महारामायण यस्याशेन समुद्भूता ब्रह्म विष्णु महेश्वरा ।
तुलसी —शभु विरचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अशते नाना ॥
रामायण —सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित ।
तुलसी —अरध तजहिं बुध सर्वस जाता ॥
शिवपुराण —क्लीव च दुरवस्थ वा व्याधित वृद्धमेव च।
सुखिन दु खित वापि पतिमेक न लघयेत
भागवत दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पति स्त्रीभिर्न हातव्य लोकेप्सुभिरपातकी ॥
तुलसी —वृद्धरोग बस जड धनहीना। अध बधिर क्रोधी अतिदीना ॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना। नारि पाव जमपु दुख नाना ॥

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि मध्य तथा आधुनिक युग मे वेदादि सद्ग्रथ आस्तिक सम्प्रदायो के प्रेरणा स्रोत रहे है। भगवान शकराचार्य, आचार्य रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बर्काचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु गुरु नानक, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महामना तिलक, महात्मा गाधी प्रभृति महापुरुष इनकी शिक्षाओ का अनुसरण करते हुए समय समय पर भारतवासियो म नवजीवन का सचार करते रहे हैं। इसी प्रकार देववाणी सस्कृत से अनभिज्ञ जनता को रामचरितमानस वेदविहित मार्ग पर अग्रसर करता चला आ रहा है और इस कठिन समय मे भी हमारा पथ-प्रदर्शक हो सकता है इसमे कोई सन्देह नही। तभी तो अब्दुर्रहीम खानखाना ने आज से लगभग पौने चार सौ वर्ष पहले कहा था —

रामचरितमानस बिमल सतन जीवनप्रान।
हिन्दुआन को वेदसम जमनहिं प्रगट कुरान ॥[1]

1 उद्धृत, मानसाक प्रथम खड, पृ० 2

आदर्श राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना के लिए तुलसी शासक से अपेक्षा करता है कि वह मुख के समान व्यवहार करे। वास्तव में मनुष्य-समाज में राजा की वही स्थिति है, जो शरीर में मुख की। मुख नाना प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और पेय पदार्थ भक्षण करता है परन्तु उन्हें वह अपने पास जमा नहीं रखता अपितु उन्हें यथा विधि पाकस्थली में पहुंचा कर आप जल से प्रक्षालन कर पुन पूर्ववत हो जाता है उसी प्रकार राजा के पास जो धन आए यदि वह उसे सदा प्रजाजन हिताय प्रयोग करता रहे तो उभय पक्ष का कल्याण होता है। तुलसी ने सारे राज्य-शासन तत्वरत्न को निम्नलिखित पद्य-मंजूषा में बन्द कर दिया है —

मुखिया मुखु सो चाहिये, खानपान कहु एक।
पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥ (2/315)

उपरिलिखित तथ्य का महत्व तुलसी इन शब्दों में कहते हैं—'राज्य धर्म सरबस इतनोई' (2/315/1)।

'तुलसी सतसई' में कवि ने प्रतिपादित किया है कि राजा में माली, सूर्य और अग्नि इन तीनो के गुण होने चाहिए। वास्तव में माली का सर्वस्व बाग है जैसे राजा का सर्वस्व उसका देश है और बाग का एकमात्र रक्षक माली है वैसे देश का रक्षक एकमात्र राजा है। माली वाटिका को सदा निरापद रखकर उसके बेल-बूटों को सिंचनादि द्वारा उनके पल्लवित पुष्पित और फलित होने में साहाय्य प्रदान करता है, उसी प्रकार राजा का धर्म है कि वह देश को सर्वथा बाह्य शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित करता हुआ प्रजाओं को अभ्युदय एवं निःश्रेयस् के सन्मार्ग पर ले चले। ये पंक्तियां अवलोकनीय हैं —

माली भानु कृसानु सम, नीति निपुन महिपाल।
पूजा भाग बास होहिंगे, कबहु कबहु कलिकाल॥

इस दृष्टि से तुलसी ने प्रजाओं की सुख-समृद्धि एवं उनकी धर्म परायणता का चित्रण उत्तरकाण्ड में किया है। (7/19 क/4 तथा 20/ख29)

राजा अपने राज्य को बाह्य सौन्दर्य से मंडित बनाता है। रामराज्य की सुन्दरता भी दर्शनीय है (7/22-23)।

सूर्य के समान राजा का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में अविद्या रूपी अन्धकार का नाश करता हुआ विद्या रूपी प्रकाश का दिग्-दिगन्त में प्रसार करे। राम-राज्य विद्या रूपी प्रकाश से कैसे जगमगा रहा था तनिक देखिये —

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहु लोका। बहुतन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका॥
..........................प्रथम अविद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहं जहां लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥

मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहु ओरा ।।
धरम तड़ाग ज्ञान विग्याना । ए पकज विकसे विधि नाना (7/30-1-4)

जैसे सूर्य अपनी प्रचण्डता और दाहकता से अनाकांक्षित वस्तुओ का नाश करता है उसी प्रकार राजा भी प्रजावर्ग मे समृद्धि तथा सुख, शान्ति की स्थापना के लिए अत्याचारियो, आततायियो और समाज-विरोधी तत्वो का दमन करता है।

यदि वास्तव मे राजा अपनी दण्ड-नीति पर दृढ रहे, तो दुष्टों को दुष्टता करने का साहस नही हो सकता। तुलसी ने पावस ऋतु का वर्णन करते हुए उदाहरणालकार के स्वरूप मे इस सिद्धान्त की पुष्टि की है :—

अर्क जवास पात बिन भयऊ। जस सुराज खल उदयम गयऊ (2/14/2)

अर्थात् पावस ने जिस प्रकार अर्क-जवास को शोभाहीन कर दिया है, उसी प्रकार उत्तम राजा दुष्टो को नि शक्त बना देता है। सुराज्य वही है जहा राजा के भय से अनाचारियो को अनाचार करने की शक्ति ही प्राप्त न हो। आजकल की बहुत-सी समस्याओ का जैसे काला धन, चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी, सिफारिश, मदिरा-सक्ति धनलोलुपता, जमाखोरी, सत्ता का दुरुपयोग आदि का एकमात्र हल दण्डनीति ही है। तुलसी दण्डनीति का, अनुसरण उचित सीमा मे ही कल्याणकारी मानता है तभी वह 'दण्ड जतिन्ह कर' ही शोभादायक समझता है। जाति तथा वर्ग विद्वेष, प्रान्तीयता क्षेत्रीयता, भाषायी विवाद, साम्प्रदायिकता आदि शासकी की कूटनीति और सत्तालोभ के फलस्वरूप ही पनपते हैं। इसलिए तुलसी दण्ड और भेद को त्याज्य मानते है और साम तथा दाम की नीति से प्रजावर्ग पर शासन स्थापन करना ठीक समझते हैं :—

दड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। (7/22)

प्रजाओ से कर प्राप्ति करके किस ढग से उस धन का सदुपयोग किया जाना चाहिए, इसका भी तुलसी ने समुन्नत राजनीतिज्ञतापूर्ण प्रणाली से वर्णन किया है :—

बरखत हरषत लोग सब, करखत लखत न कोय।
तुलसी भूपति भानुसम, प्रजा भाग बस होय ॥

सूर्य पृथ्वीलोक के नदो जलाशयो आदि से ही जल को भाप बनाकर आकाश-मण्डल मे ले जाता है परन्तु इस क्रिया को कोई भौतिक नेत्रो से नही देखता। परन्तु जब उस भाप से मेघ बनते है तो सबके सामने भू-लोक पर मूसलाधार वृष्टि होने लगती है, और सारी वसुन्धरा जलनिमग्न हो जाती है। इस प्रकार राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजाओ से यथायोग्य उनकी आय और अवस्था के अनुसार शनैं-शनैः निश्चित कर लिया करे जिससे प्रजावर्ग के चित्त मे किसी

प्रकार का क्लेश और क्षोभ न हो। उस लिए हुए धन को राजा प्रजाओं की समृद्धि और कल्याण कार्यों में व्यय करे न कि अपने सुखभोग के लिए।

राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजाओं को समृद्धिशाली बनावे —

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ सोइ योगा॥

राजा जनक ऐसे ही आदर्श नृपति थे जिन्होंने प्रजारंजन को अपना कर्तव्य कर्म माना था। मिथिला का वैभव इस तथ्य का साक्षात् प्रतीक था। (1/212-213/1-4) और आजकल के तथाकथित समाजवाद के प्रशासकों के लिए अनुकरणीय उदाहरण।

दीनबन्धु समता विस्तारय, 'राम प्रताप विषमता खोयी' आदि पंक्तियों में निहित भाव से स्पष्ट है कि तुलसी समता के समर्थक एवं विषमता के विरोधी थे। वर्तमान भारतीय समाजवाद निश्चय ही तुलसी द्वारा प्रतिपादित 'रामराज्य' की धारणा के विरुद्ध नहीं है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के हृदय में प्रजा-वात्सल्य एवं लोकरंजन का भाव अतिशयता की मात्रा तक विद्यमान था। कहीं कहीं तो प्रजारंजन की मात्रा सीमा का उल्लंघन कर अतिरूप में परिणत हो गई है। एक साधारण प्रजा के प्रमादपूर्ण कथन पर सीता का परित्याग इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

तुलसी यद्यपि राजतन्त्र में विश्वास रखता था तथापि वह राजा से अपेक्षा करता था कि वह राज्य शासन लोकतन्त्रीय पद्धति से चलाए। इसीलिए महाराज दशरथ की प्रबल इच्छा होने पर भी कि श्रीराम को युवराज बनाया जाए, वे गुरु वशिष्ठ से आदेश प्राप्त करते हैं।

नाथ राम करिय युवराजू। करिय कृपा करि करिय समाजू॥ (2/3/1)
जो पाचहि मत लाग नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥ (2/4/2)

श्रीराम के वनवास से लौटने पर वशिष्ठ जी भी स्वयं न कहकर द्विजों से राजतिलक के विषय में आदेश प्राप्त करते हैं —

सब द्विज देहु हरषि अनुशासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन॥
(7/9 ख/2)

अन्त में सर्वसम्मति से निर्णय होता है

अब मुनिवर विलम्ब नहिं कीजै। रामचन्द्र कहं तिलक करीजै॥
(7/9 ख/4)

लक्ष्मण को श्रीराम वनगमन का निषेध करते हुए समझाते हैं —

मैं बन जाऊं तुम्हहिं लै साथा। होइहिं सब विधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहं परै दुसह दुख भारू॥

रहहु करहु सब कर परितोषू ।न तरु तात होइहि बड़दोषू ।।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।
(2/2, 3)

यदि आजकल के शासक उपरिलिखित पक्तियो के (विशेषत अन्तिम पक्ति के) भावो को अपने जीवन मे ढाल लें, तो भारतवर्ष पुन सोने की चिड़िया बन सकता है क्योंकि भ्रष्टाचार ही भाईभतीजावाद, रिश्वतखोरी, कथनी और करनी मे अन्तर, बढती हुई महगाई आदि तथा व्यापक असन्तोष को जन्म देता है।

तुलसी के राम समदर्शी थे । सारा प्रजावर्ग उनके लिए समान था । छोटे-बड़े की भावना के प्रदर्शन से वे किसी को भी दुखी नही करना चाहते थे । इसीलिए जब वे रावणवध के पश्चात अयोध्या लौटे तो दर्शनो के लिए लालायित अपार जनसमूह को अनेक रूप धारण करके एक साथ ही मिलते हैं —

आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु, भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि विमान ।। (7/4 (क)
अमित रूप प्रगटे तेहि काला । यथायोग मिलि सबहि कृपाला ।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी । किये सकल नरनारि बिसोकी ।।
छन महि सबहि मिले भगवाना । उमा मरम यह काहु न जाना ।।
(7/5/3-4)

जनता जनार्दन के प्रति अनन्य अनुराग जिसका आत्यन्तिक अभाव आजकल के शासकों मे लक्षित होता है, हमारी बहुत-सी प्रजा की कुशल क्षेम सम्बन्धी समस्याओं की कुजी है ।

– स्वेच्छाचारी और निरकुश शासक को तुलसी हेय समझते है । उनका राम प्रजा को यह अधिकार प्रदान करता है कि वे अनीतियुक्त बात कहने पर उस रोकें

जौं अनीति कछु भाखौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ।।
(7/42/3)

तुलसी को दकियानूसी, प्रतिक्रियावादी तथा प्रगति का विरोधी कहने वाले साम्यवादी सिद्धान्तो के पृष्ठपोषक उससे मानवीय स्वतन्त्रता का पाठ सीख सकते हैं। तुलसी से बढकर मानव स्वतन्त्रता का समर्थक कौन हो सकता है जिसने परमानन्दसन्दोह, अखिल ब्रह्माण्डनायक, व्यापक, अज, अनीह, निर्गुण ब्रह्म क अवतार श्रीराम से कहलवाया है, "हे समस्त नागरिको ! मेरी बात सुनिए ।' न इस वाणी मे ही मेरी कोई ममता है जिसके न मानने से मुझे खेद होगा । न राजा होने के अधिकार से मैं कहता हू कि मेरी आज्ञा आपको माननी ही पडेगी और न अन्याय की ही बात कहता हू । अत सकोच और भय छोड़ कर मेरी बातो को सुन लो और यदि तुम्हे अच्छी लगें तो उसका अनुसरण करो

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
(7/42/3)

तुलसी के राम इतने नम्र हैं कि वे प्रजा को, जिसके साथ आजकल के शासक कीड़े-मकौड़ों जैसा व्यवहार करते हैं, हाथ जोड़कर सम्बोधित करते हैं :—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
(7/45)

यदि श्रीराम स्वयं अमित ऐश्वर्य के स्वामी थे तो उन्होंने अपनी प्रजाओं को भी ऋद्धि-सिद्धि से समन्वित किया था जिसकी ओर इंगित तुलसी ने अयोध्या-वर्णन के प्रसंग में किया है —

रमानाथ जहं राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥ (7/29)

तुलसी ने रामचरितमानस में 'कोल किरात भिल्ल बनवासी', केवट, निषादराजगुह तथा शबरी के प्रति श्रीराम के निष्कपट प्रेम तथा व्यवहार के द्वारा आजकल चारों ओर फैले हुए वर्ग और वर्णगत वैमनस्य तथा ऊंच-नीच के भावों के निराकरण का उपाय वर्णित किया है। चक्रवर्ती, वसुधाधिप श्रीराम और एक तुच्छ जल-जन्तु मल्लाह का प्रेममय व्यवहार तुलसी की अत्यन्त अनुराग-पूर्ण रसीली शैली में देखिए

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
(2/101/1—3)

चित्रकूट में भगवान से मिलने के लिए ऋषि मुनि भी आये और साथ आए प्रकृति माता के सुहृद पुत्र शुद्धान्तकरण वाले जंगली कोल किरात भील आदि। समदर्शी भगवान ने जो वेद तथा मुनियों के लिए भी अगम्य हैं, उनके वचन उसी भाव से सुने जैसे पिता बच्चों की वाणी सुनता है और फिर उन्हें मधुर वचनों से भी परितुष्ट किया क्योंकि 'रामहि केवल प्रेम पिआरा।'
(2/36/1)

बेद बचन-मुनिमन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन।
(2/136)

राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
(2/136/1)

निषाद के समान एक तुच्छ व्यक्ति के साथ रघुकुल तिलक राम इस उल्लास से मिले कि तुलसी ने उस निषाद को 'राम सखा' की उपाधि से अलंकृत किया।

उसको आता हुआ देखकर महाबली भरत अपना रथ परित्याग कर भूमि पर उतर पड़ते हैं। उत्तरकाण्ड में श्रीराम निषाद को भरत तुल्य मानकर कहते हैं कि तुम सदा अयोध्या में आते जाते रहा करो —

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।
(7/19—2)

इसी प्रकार राम की प्रतीक्षा में बावली हुई शबरी का राम लक्ष्मण माता के समान आदर करते हैं 'जननि ज्यों आदरी सानुज'। हमारे आजकल के धनाभिमानी, जात्याभिमानी और धर्माभिमानी मानव इन आदर्शों का अनुकरण करके हमारे समाज की विषमता को सदा के लिए दूर कर सकते हैं।

आज के सत्तालोलुप राजमद से गर्वित तथा येनकेन प्रकारेण कुर्सी से चिपटे रहने वाले मनुष्य भरत द्वारा स्थापित आदर्श का अनुगमन करके अपना तथा समाज का कल्याण कर सकते हैं। इतने बड़े समृद्धशाली वैभव तथा ऐश्वर्ययुक्त साम्राज्य को गुरुजनों के आदेशों के विरुद्ध आचरण करते हुए, ठोकर मारना निस्पृहता की चरम सीमा है।

पितु आयसु पालिय दुहु भाई। लोकवेद भल भूप भलाई।।
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहु कुमगु पगु परै न खालें।।
अस विचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई।।
(2/314/2—3)

सुम मुनि मातु सचिव सिखमानी। पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।
(2/314/4)

बन्धु प्रबोधु कीन्ह सब भाँति। बिनु आधार मन तोष न साँति।।

इस तथ्य का इतिहास साक्षी है कि संसार की किसी भी अन्य सभ्यता और संस्कृति में ऐसा एक भी उदाहरण प्राप्त नहीं होता जहां किसी ने राजसी ठाट-बाट को तिरस्कृत कर तपस्वी जैसा जीवन व्यतीत किया हो। भगवान राम की पादुका को राजसिंहासन पर स्थापित कर भरत नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर तपस्वी वेश में तपश्चर्यापूर्वक श्रीराम के प्रत्यावर्तन की प्रतीक्षा करता है।

प्रभु करि कृपा पावरी दीन्ही। सादर भरत बाह गहि लीन्ही।।
(2/315/2)

पारिवारिक विघटन, वैमनस्य तथा विशृंखलता आदि समस्याओं का समाधान मानस के भिन्न-भिन्न पात्रों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा सम्भव हो सकता है। मानस में मातृ-पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा है, भ्रातृ प्रेम की पराकाष्ठा है, पुत्र वात्सल्य की पराकाष्ठा है सतीत्व की पराकाष्ठा है, सास श्वसुर सेवा की पराकाष्ठा है और है पराकाष्ठा एक पत्नी-व्रत की।

तुलसी के राम प्रात काल उठ कर सर्वप्रथम माता पिता को वन्दना करते है .—

प्रात काल उठि क रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहि माथा ॥
(1/204/4)

वनवास को आज्ञा सुनकर श्रीराम कैकेयी को कहते हैं

सुनु जननी सोइ सुत बड भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु पोषन हारा । दुर्लभ जननि सकल ससारा ॥
(2/40/4)

इतना अहित करने पर भी श्रीराम चित्रकूट म तथा वनवास स लौटने पर अयोध्या म सबसे पहले कैकेयी स ही मिलते ह —

प्रथम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभाय भगति मति भेंई ।
पगपरि कीन्ह प्रबोध बहोरी । काल करम विधि सिर धरि खोरी ॥
(2/243/4)

तथा

प्रभु जानी कैकइ लजानी । प्रथम तासु गृह गय भवानी ॥
(7/9/1)

समस्त 'रामचरितमानस' रूपी प्रासाद की आधारशिला पितृ भक्ति है ।

चौदह वर्ष के वनवास की पितृ आज्ञा को धर्मात्मा राम अत्यत तुच्छ समझते हैं

तात कहहु कछु करउ ढिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ।
अति लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
(2/44/3—4)

गुरु, पुरोहित, बन्धु बान्धव, दास-दासी और नागरिक जना को एकत्रित करके श्रीराम करबद्ध प्रार्थना करते है कि आप सब लोग इस प्रकार व्यवहार करें जिससे राजा सुखी रहे

बारहि बार जोरि जुग पानी । कहत राम सब सन मृदुबानी ॥
सोई सब भाति मोर हितकारी । जेहि ते रहै भुआल सुखारी ॥ (2/79/4)

श्री राम वन से भी सुमन्त के द्वारा पिता के प्रति कुशल क्षेम विषयक सदेश प्रेषित करते हैं । (2/95—1) । उधर पुत्र तथा पुत्रवधु के विरह मे तडपते हुए महाराज दशरथ राम राम की रट लगाते हुए अपने प्राण त्याग देते हैं —

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते । तुम बिन जियत बहुत दिन बीते ।
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु चितहित चातक जलधर ॥
(1/154/4)

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम
तनु परिहरि रघुवर बिरह, राउ गये सुरधाम ॥ (2/155)

माता-पिता के अनन्तर हमारे प्राच्य शास्त्रो के अनुसार गुरु अथवा आचार्य का स्थान सर्वोच्च है। गुरु हमारे समस्त अज्ञानान्धकार का विनाशक और उभय लोको का वास्तविक पथ-प्रदर्शक होकर हमारे लिए सुख एव शान्ति का विधायक है।

'मानस' मे गुरु-गरिमा का अटूट प्रवाह बह रहा है।

बन्दौं गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू ॥ (1/5/1)

जे गुरु चरण रेणु सिर धरही। ते जन सकल विभव बस करही ॥ (2/2/3)

श्री राम, जिनके विषय मे कहा जाता है कि वे पूर्ण ब्रह्म के अवतार स्वय भगवान ही हैं (*रामस्तु भगवान स्वयम्—महारामायण*) *अभ्यागत गुरु वशिष्ठ का स्वागत* किस तीव्र अनुराग और असीम भक्ति से करते हैं, अवलोकनीय है —

गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी ॥ (2/8/1—2)

वन-यात्रा करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम राम निरभिमानता पूर्वक मुनियो, ऋषियो और तपस्वियो को दण्ड-प्रणाम करते हैं —

तब प्रभु भरद्वाज पहं आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये। (2/105/4)
... ... बालमीक आश्रम प्रभु आए। (2/123/3)
मुनि कहु राम दण्डवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्रवर दीन्हा। (2/124/1)
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥ (3/2/2)
करत दण्डवत मुनि उर लाये। प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये ॥ (3/2/3)

जनकपुरी मे पहुच कर लक्ष्मण नगर को देखना चाहता था परन्तु सकोचवश अपने मन की अभिलाषा प्रकट नही कर सकता। अनुज की इच्छा जानकर श्रीराम अत्यन्त विनीतता से गुरु विश्वामित्र से आज्ञा मागते हैं। आदेश मिलने पर ही दोनो राजकुमार भ्रमण के लिए निकलते हैं। (1/217/1—4 तथा

218/1) सायंकाल होने पर ऋषि दोनों भाइयों को प्राचीन कथाएं तथा इतिहास सुनाकर स्वयं सो जाते हैं। दोनों भाई ऋषि के चरणों को तब तक दबाते हैं जब तक बारम्बार उन्हें विरत होने की आज्ञा नहीं मिलती। श्री राम के शयन करने पर लक्ष्मण अपने भाई के चरण दबाता है। रात्रि बीतने पर पहले लक्ष्मण उठते है तत्पश्चात् श्री राम गुरु जी के जागने से पूर्व स्वयं निद्रा रहित होते हैं।

मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
तेइ दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते ॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥
चापत चरन लखनु उर लाएं। सभय सप्रेम परम सचु पाएं ॥
(1/225/2—4)

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान ॥
गुरु तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान। (2/226)

मानस में भ्रातृस्नेह का अथाह सागर है। लक्ष्मण के जीवन का एकमेव लक्ष्य अपने बड़े भाई श्री राम की सेवा ही था। एतदर्थ लक्ष्मण घोषणा करते हैं '—

गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाव नाथ पतिआहू ॥
जहं लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई ॥
मोरें सबै एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अन्तरजामी ॥
(2/71/2—3)

श्रीराम चित्रकूट की ओर आ रहे भरत के शील, स्वभाव और विशुद्ध भ्रातृत्व का स्वर्णाक्षरों में समर्थन करते हैं

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महं सुना न दीसा ॥
(2/230/4)

भरतहिं होइ न राजमद, बिधि हरि हर-पद पाइ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि, छीर सिन्धु बिनसाइ ॥ (2/231)

श्रीराम को वन से लौटने में असफल होकर भरत निराश नहीं होता। उनकी पादुकाओं को सिंहासनासीन करके वह उन्हें प्रतिदिन पूजता है और उनसे आज्ञा मांग कर राजकाज चलाता है। वे कुटिया में रहकर तप से शरीर को कष्ट दे रहे हैं। सब लोग भरत के इस आचरण की सराहना करते हैं। उनके कठोर व्रत को देखकर साधु भी सकुचाते हैं —

नित पूजत प्रभु पांवरी प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करत राजकाज बहु भांति ॥
पुलक गात हियं सिय रघुबीरू। जीह नाम, जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू । सब विधि भरत सराहन जोगू ।।
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही । देखि दसा मुनिराज लजाही ।।
(2/235/1-2)

तभी भरत को जनकजी भरतसम कहते हुए उन्हे 'अवधि सनेह ममता' की पदवी देते हैं (2/228 तथा 3)।

रामचरित मानस को पढ कर यह अनुमान लगाना कठिन है कि श्री राम के प्रति लक्ष्मण की भक्ति विशेष थी कि लक्ष्मण के प्रति राम की बन्धु वत्सलता अधिक थी। लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर श्रीराम के भ्रातृ स्नेह और वात्सल्य से सिंचित उद्‌गारो को पढकर हृदय द्रवित हो जाता है —

सुत वित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।
अस विचारि जिय जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।
यथा पख बिनु खग अति दीना । मनि बिनु फनि करिबर कर हीना ।।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही । जौ जड दैव जियावै मोही ।।
(6/60/4-5)

'मानस' मे सीता-राम, शिव-पार्वती, अनुसूया-अत्रि और अनेक स्त्री पुरुषो के पावन जीवन दाम्पत्य-प्रेम मे आदर्श है। सदाचार-मूर्ति धर्मावतार श्रीराम ने बडी दृढता से कहा है कि मुझे अपने मन पर इतना अधिकार प्राप्त है कि वह अन्य स्त्री के प्रति आसक्त होना तो दूर रहा, स्वप्न मे भी परनारी की ओर दृष्टि तक नही डाल सकता—मोहि अतिशय प्रतीति जिय केरी । जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ।
(1/230/3)

सीता पति-वियोग मे स्वर्ग को भी नरक के समान तुच्छ और हेय समझती है। सीता ने वन मे समस्त कष्टो को पतिदेव के साथ झेला परन्तु उसकी मुखश्री तनिक भी म्लान न हुई। पूज्य पति की प्रतिष्ठा उसके मन मे असीम थी। वन मे अग्रसर होते हुए श्रीराम के चरण-चिह्न पृथ्वी पर अंकित होते जाते हैं, पतिव्रता सीता भगवान सम पति के उन चरण-चिह्नो पर अपने पैर रखने को धृष्टता समझ 'प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मगु चलति सभीता।' (2/122/3) दोनो चरण चिह्नो के मध्य जो स्थान खाली है उसी पर अपने पावो को रखती तो है पर डरते-डरते। ससार के इतिहास मे इस प्रकार के दाम्पत्य भाव का उदाहरण भारतेतर देशो मे पा सकना असभव है।

भगवती सीता अपने सास-ससुर का परम आदर करती है। वन जाने के समय महारानी कौशल्या से सीता कहती है —

तब जानकी सासु पग लागी । सुनिय मातु मैं परम अभागी ।।
सेवा समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ।।

(2/68/2)

चित्रकूट में थोड़े समय के लिए अवसर पाते ही सीता सब 'सासुओं' की उतने ही रूप धारण करके समान भाव से सेवा करती है :—

सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करति सरसि सेवकाई॥
लखा न मरम राम बिनु काहू। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीय सासु, सेवा बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही॥

(2/251/1-2)

रामचरितमानस में तुलसी ने प्रतिपादित किया है कि भगवान की ऐकान्तिक भक्ति ही धार्मिक विद्वेष पर कुठाराघात कर सकती है। निष्काम भक्त शैव, शाक्त, वैष्णव, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सबमें समान बन्धुत्वभाव का अनुभव करता है, तथा सब धर्मप्रवर्तकों या आचार्यों में आदरबुद्धि रखता हुआ प्रेमपूर्वक कहता है—'बंदऊं सबहि राम के नाते' तथा 'निज प्रभुमय देखहि जगत केहि सन करहि विरोध' (7/112ख) 'मानस' में भगवान शिव श्रीराम का और श्रीराम को भगवान शिव का अनन्य भक्त और प्रेमी प्रमाणित किया। भगवान शिव कहते हैं—राम ब्रह्म व्यापक जगजाना। परमानन्द परेस पुराना। (1/115/4) पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ। रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ। (1/116)

नल-नील द्वारा सेतु निर्माण के पश्चात् श्रीराम वहां सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर विधिपूर्वक शिवलिंग की स्थापना तथा पूजा करते हैं। तदुपरांत वे कहते हैं "सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥ सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा॥ संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥ संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरिघोर नरक महु बास।" (6/1/3, 4 तथा 6/2)

मानस में चार घाटों पर चार प्रकार के साम्प्रदायिक गुरुओं को इकट्ठा करके तुलसी ने इस ओर इंगित किया कि समाज का कल्याण सब मतमतान्तरों के भक्ति के नाते एकजुट हो जाने में है। उन चारों घाटों पर वेदान्तियों की ओर से याज्ञवल्क्य, शैवों की ओर से स्वयं शिव, संतमत की ओर से काकभुशुण्डि और वैष्णवों की ओर से स्वयं तुलसी या उनके गुरु विद्यमान हैं जो इस तथ्य की सत्यता के प्रतीक हैं।

रामचरितमानस में वर्ण-भेद से उत्पन्न ऊंच-नीच के भाव को गर्हित माना है। यहां वर्ण की उच्चता को प्रधानता न देकर सदाचार की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है। तभी इसमें ज्ञानी काकभुशुण्डि को जो पक्षियों में शूद्रवर्ण के थे, पक्षिराज गरुड़ से उच्च स्थान पर आसीन किया गया और गरुड़ के मुख से शुद्ध आचरण की श्रेष्ठता स्वीकृत करायी गई।

तुलसी ने वर्ण-विद्वेष की अग्नि को प्रज्वलित करने वालों को भी त्याज्य माना

है। परशुराम वर्गविद्वेष के प्रवर्तक थे, उन्हे भरी सभा मे लक्ष्मण से अपमानित करवा कर इस सच्चाई की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि वर्गविद्वेष के प्रचारको से समाज का कल्याण सम्भव नही।

चारित्रिक गुणो का ह्रास आज हमारी अधोगति का सर्वप्रथम कारण है। चरित्र का निर्माण धर्मानुसरण से होता है। सम्प्रति हमारे राष्ट्र के लिए शरीर-बल, धन बल, बुद्धि बल और सगठन-बल की अपेक्षा धर्म बल की अत्यावश्यकता है। धर्म बल के अर्जित हो जाने पर शेष सब बल अपने आप सुलभ हो जाते है। 'रामचरितमानस' मे पग-पग पर धर्म बल की शिक्षा मिलती है। रावण से युद्ध के समय श्रीराम ने धर्मरथ के रूपक द्वारा धर्म के स्वरूप का विशद चित्रण किया है जो न केवल हमारे लिये बल्कि मानव मात्र के लिए आदर्श है। इस धर्म-रथ पर आसीन होकर श्रीराम ने रावण जैसे दुर्जेय शत्रु को विजित किया। धृति, क्षमा, दम, सत्य, आस्तिकता विरति सन्तोष, दानशीलता, सुबुद्धि, विज्ञान, विशुद्धभाव, यम, नियम और नम्रता इन सबसे इस अनुपम स्पन्दन का निर्माण होता है जिसका अधिष्ठाता होकर मानव ससार समर मे उत्कर्ष प्राप्त करता है (6/29/80क) धर्म का पालन करने से मानव सदाचारी बनता है। आचारहीन मनुष्य के विषय मे वशिष्ठ स्मृति मे कहा है

आचारहीन न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता सहषडभिरङ्गै ।
छन्दास्येन मृत्युकाले त्यजन्ति नीडम् शकुन्ता इव जातपक्षा ॥

मनुस्मृति मे भी धर्म के लक्षणो मे से सदाचार को वर्णित किया है

वेद स्मृति, सदाचार, स्वस्य च प्रियमात्मन । एतच्चतुर्विध प्राहु साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् (2/12)

स्पष्ट है कि वेदादि अध्ययन के पश्चात् भी यदि मनुष्य सदाचारी नही बनता तो उसका कल्याण नही हो सकता। श्रीराम साक्षात् धर्म स्वरूप थे अत शील-निधान और सदाचारी थे। इसके विरुद्ध रावण अधर्मी असदाचारी, कामी, पर-पीडक,अहकारी, मदिरापायी तथा दुर्वृत्त था। फलस्वरूप सर्वसमर्थ, शक्तिशाली, अपरिमित वैभव सम्पन्न साम्राज्य का शासक होने पर भी वह दो वनवासी साधन-हीन तपस्वियों मे जो केवल धर्मरथी और सदाचारी थे, बुरी तरह पराजित हुआ और उसकी स्वर्णमयी लका धूलिधूसरित हो गई।

'मानस' म मानवता-प्रेम को प्रमुखता देते हुए बताया गया है कि यह धर्म का सारभूत तत्व है : परहित सरसि धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई ॥ (7/40/1) यदि हम इस एक पक्ति मे समाहित भाव को अपने जीवन मे उतार लें तो अनेकानेक चारित्रिक दुर्गुणो से मुक्त हो हम आज की इस पतित अवस्था मे भी 'रामराज्य' लाने मे समर्थ हो सकते हैं और यही 'रामचरितमानस' की हमारे लिये आज के युग मे अपरिमित सार्थकता है।

महर्षि प्रचेता के पुत्र बाल्मीकि थे। बाल्मीकि की प्रार्थना पर नारद इन्हे संक्षेप मे आदि से अंत (अयोध्या लौटने) तक की कथा सुनाते है। कथा सुनने के तुरंत पश्चात् बाल्मीकि शिष्यो सहित तमसा नदी में स्नान करने के लिए आश्रम से निकल आते हैं। कुछ समय पश्चात् मरणासन्न शोणितस्नात तड़पते हुए क्रौंच को देखकर तथा उसके वियोग में कातर स्वर में चीत्कार करती हुई क्रौंची की करुण वाणी को सुनकर ऋषि के शोक पीड़ित हृदय से व्याध के प्रति शाप निसृत हुआ। तनिक विचार करने पर महर्षि इस निश्चय पर पहुंचे कि शोक से पीड़ित उनके मुख से जो वाक्य निकल पड़ा वह चार चरणों में आबद्ध है, उसके चार चरणों मे बराबर-बराबर अर्थात् आठ-आठ अक्षर हैं वह वीणा की लय पर गाया भी जा सकता है अतः इसे श्लोक रूप होना चाहिये। अपने विनीत एवं शास्त्रज्ञ शिष्य भरद्वाज से अनुमोदन पाकर कि यह श्लोक ही है महर्षि आश्रम में पहुंचकर उसी विषय में चिन्तन करते रहे। ब्रह्मा जी के आगमन पर भी महर्षि का ध्यान उस घटना पर ही केन्द्रित रहा और उन्होंने ब्रह्मा जी के समक्ष वह घटना सहित श्लोक पुनः दुहराया। तत्क्षण शाप के अनौचित्य की शंका से उनका मन शोक और चिन्ता में निमग्न हो गया। ब्रह्मा जी ने उनकी मनःस्थिति को भांपते हुए हंस कर कहा

> श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
> मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती॥ (1/2/31)

अर्थात् हे ब्रह्मन तुम्हारे मुख से निसृत यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोक ही है। इस विषय में तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए। मेरी प्रेरणा से ही तुम्हारे मुख में ऐसी वाणी स्फुरित हुई है।

महर्षि बाल्मीकि को आश्वस्त करने के पश्चात् ब्रह्मा जी उन्हें आदेश देते हैं कि वे राम के पूर्णचरित्र को जैसाकि उन्होंने नारद जी से सुना है, वर्णित करें। उन्होंने उन्हें यह भी वरदान दिया कि 'बुद्धिमान श्रीराम का जो गुप्त या प्रकट वृत्तान्त है तथा लक्ष्मण, सीता और राक्षसों के जो सम्पूर्ण गुप्त या प्रकट चरित्र हैं, वे सब अज्ञात होने पर भी तुम्हें ज्ञात हो जायेंगे। इस काव्य में अंकित तुम्हारी कोई भी बात झूठी नहीं होगी। अतएव तुम श्रीराम की परम पवित्र एवं मनोरम कथा को श्लोक बद्ध करके लिखो।

> रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥ (1/2/31)
> रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
> वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशयदि वा रहः॥ (1/2/34)
> तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
> न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥ (1/4/35)
> कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्॥ (1/2/35½)

ब्रह्मा जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् महर्षि ने योग का आश्रय लेकर अर्थात् समाधिस्थ होकर पूर्वकाल म जो घटनाए घटित हुई थी, उन सबको हाथ मे रखे आवले के समान देखा। महात्मा नारद ने पहले जैसा वर्णन किया था, उसी क्रम से महर्षि न रघुवश-वतस श्री राम क चरित्र विषयक काव्य का निर्माण किया।

> तत पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थित ।
> पुरा यत् तत्र निवृत्त पाणावामलक यथा ॥ (1/3/16)
> ....
> स यथा कथित पूर्वं नारदेन महात्मन ।
> रघुवशस्य चरित चकार भगवान् मुनि ॥ (1/3/9)

इस काव्य का निर्माण महर्षि ने तब किया जब श्रीराम वन से लौटकर राज्य का शासन अपने हाथ मे ले चुके थे —

> प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकि भगवानृषि
> चकार चरित कृत्स्न विचित्रपदमर्थवत् ॥ (1/4/1)

पाश्चात्य तथा उनक अनुयायी भारतीय विद्वानो की यह मान्यता है कि वाल्मीकि ने, पुरातन काल से चली आ रही तथा इक्ष्वाकु कुल के सूत्रो एव बन्दी जनो द्वारा प्रचारित राम कथा मे विभिन्न सूत्रो को इकट्ठा करके, राम काव्य का प्रणयन किया। परन्तु उपरि वर्णित सन्दर्भो के अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि (1) नारद, वाल्मीकि एव राम समकालीन थे। (2) राम-कथा के प्रथम वक्ता नारद थे। (3) राम-कथा की ख्याति, मनोरमता एव जनमन रजकता राम के जीवन काल मे ही प्रस्तुत हो चुकी थी। (4) राम की आदर्श नर के रूप मे सर्वत्र प्रतिष्ठा हो चुकी थी। (5) वाल्मीकि के करुणा-विगलित हृदय से वाणी श्लोक के रूप मे निर्धारित हुई। श्लोक का अवतरण ब्रह्मा जी की प्रेरणा से हुआ। क्योकि वे चाहते थे कि राम-कथा काव्य मे गुफित की जाए। (6) वाल्मीकि ने योग समाधि द्वारा राम के जीवन की सब घटनाओ को प्रत्यक्ष के समान देखकर उसे महाकाव्य का रूप दिया।

अन्त साक्ष्य के आधार पर यह निर्विवाद है कि पाश्चात्य विद्वानो का यह मत कि रामकथा वाल्मीकि से बहुत पूर्व भिन्न भिन्न रूपो मे जनसाधारण म प्रचलित थी तथा वाल्मीकि ने बिखरे हुए सूत्रो का सकलन करके रामायण महाकाव्य की सृष्टि की, भ्रान्त है। अत यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वाल्मीकि भारत के आदि कवि हैं तथा उनका महाकाव्य भारत का प्रथम महाकाव्य है। यह आश्चर्य की बात [redacted] कि आदि कवि ने किसी प्राचीन काव्य का बिना आश्रय लिए इतने सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ की रचना की। बृहद्धर्मपुराण मे स्पष्ट वर्णित है कि श्री व्यास देव आदि सभी कवियो ने इस महाकाव्य का अध्ययन करने के पश्चात् ही पुराण महाभारत आदि का निर्माण किया। देखिए

पठ रामायणव्यास काव्यबीज सनातनम् ।
यत्र रामचरित्र स्यात् तदह तत्र शक्तिमान ॥
(बृहद्धर्म पुराण प्रथम खण्ड 30/47/51)

रामायण पठित मे प्रसन्नो अस्मि कृतस्वया
करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव न)
(बृहद्धर्म 1/30/55)

महर्षि बाल्मीकि ने इसे दूसरे नाम 'पौलस्त्यवध' से भी अभिहित किया है। (1/4/7)
तथा इसे 'परकवीनामाधार' की सज्ञा से भी विभूषित किया है। (1/4/26/½)

बाल्मीकि रामायण के भारत मे चार पाठ प्रचलित हैं।

1. पश्चिमोत्तर शाखा
2. बग शाखीय (गोरेशियो का सस्करण)
3 दाक्षिणात्य सस्करण (गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई का तीन टीकावली सस्करण तथा मध्यविलास बुक डिपो, कुम्भ कोणम् का सस्करण।)
4. उत्तर भारत का सस्करण (काश्मीरी सस्करण)

इनमे दाक्षिणात्य एव औदीच्य सस्करण पूर्वत समान है अत इन दोनो का ही सर्वत्र प्रचार तथा प्रामाण्य है।

महर्षि बाल्मीकि की वरदान स्वरूप भविष्यवाणी की जब तक इस पृथ्वी तल पर रहेगी तथा नदिया बहती रहेंगी तब तक सारे विश्व मे रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा।

यावत् स्थास्यन्ति गिरय सरितश्च महीतले ।
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥ (1/3/36-37)

अक्षरश ठीक सिद्ध हो रही है। महाभारत एव पुराणो से लेकर आज तक यह अप्रतिम ग्रन्थ सहस्रो कवियो का उपजीव्य एव प्रेरणा स्रोत रहा है। अधोलिखित राम-काव्य परम्परा का सर्वेक्षण इस सत्य का साक्षी है तथा प्रमाण है कि यह कथा 'कल्पभेदी' है।

महाभारत मे राम कथा का चार स्थलो पर उल्लेख है।

1 सभा-पर्व 38/29 के पश्चात् दा० पाठ पृ० 794-795

2. वन-पर्व 84/70-71, 99/41-71, वन० 148 अध्याय, 274/6-9, 277/6-9, 567, 278,/6-44, 279/14-48, 280/1-40, 282/5-71, 283/1-54, 284/1-22, 39, 285 अध्याय, 288 अध्याय, 289/1-14-290 अध्याय,292/1-70

3. द्रोण० 59 अध्याय
4. शान्ति० 29/51-62

पुराणों तथा उपपुराणों में राम-कथा

1. पद्म पुराण मे राम कथा का विस्तार के साथ बार-बार वर्णन हुआ है। सृष्टि खण्ड मे भगवान की वन-यात्रा व तीर्थ यात्रा आदि 14 और 40 से 70 तक के अध्यायो मे आई है। पातालखण्ड मे रामाश्वमेघ यज्ञ का 70 अध्यायो मे वर्णन है। 97 से 92 तक अध्यायो में जाम्बन्त द्वारा पूर्व कल्प के विचित्र राम-चरित्र का उल्लेख है।

2. ब्रह्म पुराण मे 43, 123, 70-176 अध्यायो मे राम-कथा सविस्तार वर्णित की गई है।

3. स्कन्द पुराण मे ब्रह्मखण्ड के सेतुखण्ड तथा धर्मारण्य खण्ड राम के चरित्रो से ओत-प्रोत हैं।

4. ब्रह्माण्ड पुराण के खण्ड 3/73 आदि मे राम-कथा गाई गई है।

5 वराह् पुराण के 45वें अध्याय मे रामकथा अंकित है।

6 वायु पुराण के 2/29 तथा 99/183-199 अध्यायो मे राम-कथा समाविष्ट है।

7. अग्नि पुराण मे राम-कथा सार रूप से 2-12 अध्यायो मे समाहित हुई है।

8. शिव पुराण के सतीखण्ड मे राम-चरित्र प्राप्त होता है।

9. भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व मे राम-कथा का उल्लेख है।

10 भागवत, देवी भागवत, देवी पुराण तथा महाभागवत मे राम-कथा का सविस्तार वर्णन है। भागवत 5/19 एव 9/10-13 अध्यायो मे राम-कथा आई है। देवी पुराण के 84 अध्याय म तथा देवी भागवत के 4वें एव 9वें स्कन्धो मे राम चरित्र अंकित है।

11. गरुड पुराण मे 143वें अध्याय मे राम-कथा का विस्तार है।

12. कूर्म पुराण मे राम-कथा 1/19-21 तथा 2/34 अध्यायो मे समाविष्ट है।

13. कालिका पुराण का 62वा अध्याय राम-चरित्र से विस्तारपूर्वक विन्यस्त है।

14. आदि पुराण मे राम-कथा 12वें अध्याय मे उल्लिखित है।

15. ब्रह्मवैवर्त पुराण मे कृष्ण जन्म-खण्ड के 62वें अध्याय मे पूरी राम-कथा सक्षेप से वर्णित है।

16. हरि वश पुराण 1/41वें अध्याय मे राम-चरित्र का अकन हुआ है।

1. संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध-राम-कथा साहित्य को निम्नलिखित काव्य विधाओं में विभक्त किया जा सकता है। 1. रामायण 2. संहिता 3 महाकाव्य 4 खण्डकाव्य 5 चम्पू काव्य 6 नाटक 7 स्तोत्र 8. सूत्र ग्रन्थ 6 आलोचनात्मक निबन्ध।

राम-कथा से सम्बन्धित अनेक संहिता ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनमें राम के मधुर रूप की उपासना वर्णित [redacted] जिसका विकास कदाचित् श्रीमद्भागवत के पश्चात् हुआ। संहिताकारों ने रामाख्यान के मधुर रूप को ही ग्रहण किया है अतः इन संहिताओं में राम काव्य का प्रबन्धकाव्यानुसारी रूप प्रस्फुटित नहीं हो सका—संवाद या कथोपकथन के रूप में ही राम चरित्र का एक अंश उपलब्ध होता है। निम्नलिखित संहिताएं महत्वपूर्ण मानी जाती हैं :—

1 श्री हनुमत्संहिता-हनुमान-अगस्त्य संवाद : राम की रासलीला एवं जल विहार का वर्णन।

2 श्री शिव संहिता-शिव-पार्वती संवाद तथा अगस्त्य : हनुमान संवाद में श्री राम के अनन्त गुणों तथा विभूतियों का वर्णन, वन-दर्शन एवं वन केलि का वर्णन। रास विलास को देखकर भगवान शिव ताण्डव नृत्य को भूल गए।

3 श्री लोमश संहिता-पिप्पलाद मुनि तथा लोमश संवाद, केवल आठ अध्याय उपलब्ध (15-22 तक) रास विलास का वर्णन।

4 श्री अगस्त्य संहिता—यह वैष्णवों की अतीव प्रामाणिक संहिताओं में परमादरणीय है। इसमें अगस्त्य सुतीक्ष्ण संवाद है। ब्रह्मविद्या के निरूपण के साथ भिन्न-भिन्न फलों की प्राप्ति के लिए विभिन्न राममन्त्रों के न्यास, विनियोग, कीलक, बीज आदि का उल्लेख है।

5 श्री वाल्मीकि संहिता यह रामानन्दीय वैष्णवों में परम श्रद्धास्पद है। इसमें देवगुरु बृहस्पति सभी मुनियों के प्रति श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का विवेचन करते हैं।

उपरिलिखित संहिताओं के अतिरिक्त रामावत-सम्प्रदायों के मधुरोपासक भक्तों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए निम्नलिखित संहिताओं को उद्धृत किया है।

1 श्री शुक संहिता, 2. श्री वशिष्ठ, संहिता, 3 सदाशिव संहिता, 4. श्री महाशम्भु संहिता, 5 हिरण्य गर्भ संहिता, 6 महासदाशिव संहिता, 7 पुराण संहिता, 8 आलवन्दार संहिता, 9 बृहत्सदाशिव संहिता, 10 श्री सनत्कुमार संहिता।

इन संहिताओं के अतिरिक्त वैष्णव सम्प्रदायों में उपनिषदों का भी उल्लेख है जिनमें राम-कथा के कुछ अंश प्राप्त होते हैं। ये उपनिषद कथा-तत्त्व की अपेक्षा

राम भक्ति के दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। निम्नलिखित उपनिषद महत्वपूर्ण हैं :—

1. रामोत्तर तापनीयोपनिषद् 2 मुक्तिकोपनिषद 3. रामरहस्योपनिषद 3 रामोपनिषद् 5 श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्।

संस्कृत में राम-कथा संबंधी साहित्य

महाभारत के खिलभाग हरिवंश पुराण में यह वर्णन प्राप्त होता है कि भद्र नामक यादव ने रामायण नामक महाकाव्य की कथावस्तु को लेकर दानव वज्रनाभ के नगर वज्रपुर के शाखानगर सुपुर में नाटक खेला। अत इसे रामायण की कथा पर आधारित सर्वप्रथम नाटक कहा जा सकता है। इसमें यह दिखाया गया कि राक्षस राज रावण के वध की इच्छा से अप्रमेय स्वरूप विष्णु का भूतल पर अवतार हुआ। लोमपाद ने महामुनि ऋष्य शृंग को गणिकाओं के साथ अपने यहां बुलवाया फिर महाराज दशरथ ने ऋष्य शृंग के साथ उनकी पत्नी शान्ता को भी अपने यहां निमन्त्रित किया। राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत ऋष्य शृंग तथा शान्ता का वेश उन्हीं के जैसा नटों ने धारण किया था। राजन्! जो राम के समय जीवित थे, वे बूढ़े दानव भी उन्हें देखकर विस्मित हो गए और कहने लगे 'इनका रूप तो ठीक उन्ही व्यक्तियों के तुल्य है।' रामायण महाकाव्यमुद्दिश्य नाटक कृतम्।

जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥6॥
लोमपादो दशरथ ऋष्य शृंग महामुनिम्।
शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ ॥7॥
राम लक्ष्मण शत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत।
ऋष्य शृंगश्च शान्ता च तथारूपैर्नटैः कृता ॥8॥
तत्काल जीविनो वृद्धा दान्वा विस्मय गता.।
आचचक्षु श्चतेषा वै रूप तुल्य त्वमच्युत ॥9॥

(श्रीमहाभारत खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्व 13/6-9)

भास का समय कई विद्वान् महात्मा बुद्ध से पूर्ववर्ती मानते हैं। उनके दो नाटक 'प्रतिमा नाटक' एवं 'अभिषेक नाटक' पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। भवभूति के दो नाटको, महावीर चरित तथा उत्तर रामचरितम् म से उत्तर रामचरितम् ने विशेष ख्याति प्राप्त की है। इस नाटक में करुण रस मूर्तिमन्त हो उठा है। करुण रस को रस राज की पदवी पर अधिष्ठित करने वाले भवभूति ही हैं। प्रसन्न राघव के रचयिता गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव ही हैं या कोई अन्य जयदेव—यह विषय पर्याप्त विवादास्पद है। जो भी है, प्रसन्न राघव अपने काव्य गुणों से परवर्ती कवियों का कण्ठहार बना रहा। अत उनके काव्यों में इस नाटक की उक्तियों की छाया स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। श्री मुरारि द्वारा विरचित 'अनर्घ राघव', भी

अपनी रमणीयता के कारण लोकविश्रुत है। हनुमन्न नाटक के प्रणेता श्री हनुमान जी है या कोई अन्य और, यह विषय भी विवादास्पद है। प्रसन्न राघव तथा अनर्घ राघव के समान न इसमें शास्त्रीय दृष्टि से रूप के लक्षण प्राप्त नहीं होते। अपनी सरसता, मनोरमता, चमत्कारपूर्ण घटनाओं उक्तियो एवं सूक्तियों के कारण हनुमन्न नाटक अनेको के परवर्ती कवियो का उपजीव्य रहा। 'उन्मत्त राघव' श्री भास्कर भट्ट कृत एकांकी है जिसमे वर्णित किया गया है कि स्वर्ण मृग वध के लिए पचवटी स्थित कुटिया से बाहर गए राम की अनुपस्थिति मे सीता पुष्प चयन करती हुई दुर्वासा द्वारा शापित कुज मे प्रविष्ट होकर मृगी बन जाती है। लौटने पर सीता को न पाकर राम-वियोग मे उन्मत्त होकर क्रन्दन करते हैं।

रामायण साहित्य अत्यत विपुल है। पद्मपुराण पातालखण्ड मे अयोध्या माहात्म्य के वर्णन मे रामायण के टीकाकार नागेश भट्ट के अनुसार, यह उल्लेख है।

> शापोक्त्या हृदि सतप्त प्राचेतसमकल्मषम्।
> प्रोवाच वचनम् ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृत ॥
> निषाद सर्वे रामो मृगयाम् चर्तुमागतः।
> तस्य सवर्णनपनव मुश्लोक्यस्त्वम् भविष्यसि ॥
> इत्युक्त्वा तम् जगामाशु ब्रह्मलोके सनातन।
> तत सवर्णयामास राघव ग्रथ कोटिभि. ॥

नागेश भट्ट ने कोटिभि का अर्थ 'शत को टिभि' किया तथा कहा कि बाल्मीकि ने 100 करोड़ श्लोकों की रचना की। इस भूतल पर केवल 24000 श्लोक रह गए जिनका महर्षि ने कुश लव को उपदेश दिया, शेष ब्रह्म लोक को चले गए।

बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त निम्नलिखित रामायणो का परिचय श्रीरामदास गौड कृत पुस्तक 'हिन्दुत्व' मे प्राप्त होता है (पृ० 137-143)

1 महारामायण: ऐसा कहा जाता है कि बाल्मीकि रामायण आदि रामायण नही है। भगवान शिव द्वारा रचित महारामायण ही आदि रामायण है। इसको स्वायम्भुव मन्वन्तर के पहले सतयुग मे भगवान शकर ने पार्वती जी को सुनाया था। इसमें तीन लाख पचास हजार श्लोक हैं जो 7 काण्डो मे विभक्त हैं।

2. संवृत रामायण इसके रचयिता श्री नारद जी है। इसमे 24 सहस्र श्लोक हैं। इसका समय है वत-मन्वन्तर का पांचवा सतयुग है। स्वायम्भुव और शतरूपा का प्रसग इसकी विशेषता है।

3. अगस्त्य रामायण इसे अगस्त्य कवि ने स्वारोचिष मन्वन्तर के दूसरे सतयुग में बनाया। इसकी श्लोक सख्या 16000 है। इसमे भानुप्रताप-अरिमर्दन को राम जन्म का हेतु बताया गया है। साथ ही वर्णित किया गया है कि राजा कुन्तल तथा सिन्धुमती दशरथ एव कौशल्या बने।

4 **लोमस रामायण** - इसे लोमस ऋषि ने स्वायम्भुव मन्वन्तर के 1 सहस्र बासठवें त्रेता में बनाया श्लोक संख्या 32000 है। यहा जलन्धर को रामावतार का कारण कहा गया है तथा राजा कुमुद तथा वीरमती रानी ही दशरथ कौशल्या के रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं, ऐसा वर्णित है।

5 **मंजुल रामायण** इसे एक लाख बीस सहस्र श्लोकों रामायण को सुतीक्ष्ण ऋषि ने स्वारोचिष मन्वन्तर के 14वें त्रेता में रचा। भानुप्रताप-अरिमर्दन कथा इसकी विशेषता है।

6 **सौपद्म रामायण** आत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत इस रामायण में 62,000 श्लोक हैं। इसका प्रणयन रैवत मन्वन्तर के 16वें त्रेता म हुआ। यह सप्तसोपान-बद्ध है।

7 **रामायण महामाला** इसका समय तामस मन्वन्तर का दशम त्रेता है। इसमें शिव पार्वती संवाद है तथा 56000 श्लोक हैं। इसमें शकर भगवान का मरालवेश में नीलगिरि पर रहना, काक द्वारा कथा सुनाना, गरुड उपदेश, भुशुण्डिका का गरुड को समझाना आदि विचित्र कथानक है।

8 **सौहार्द रामायण** इसको शरभंग ऋषि ने वैवस्वत मन्वन्तर के नवम् त्रेता बनाया। इसकी श्लोक संख्या 40,000 है। इसमें दण्डकारण्य की उत्पत्ति, शाप तथा श्रीराम के वहां जाने का हेतु नारद व्यामोह आदि कथाएं हैं। पशु-पक्षियो, राक्षसो एवं वानरो की भाषा का विशेष वर्णन है।

9 **रामायण मणिरत्न** इसमें वशिष्ठ अरुंधती संवाद है। तामस मन्वन्तर के 14वें त्रेता में इसका निर्माण हुआ। श्लोक संख्या 36,000 है। इसमें पंचवटी की संज्ञा, उत्पत्ति गोदावरी की उत्पत्ति का कारण आदि विशेष वर्णित हैं। अनेकानेक स्तोत्र एव गीताए इसमें अनिबद्ध हैं।

10 **सौर्म्य रामायण** 62000 श्लोकों की इस रामायण में हनुमान-सूर्य का संवाद है तथा इसका रचनाकाल वैवस्त मन्वन्तर का 20वां त्रेता है। इसमें हनुमान जन्म, शुक चरित्र, महारानी अंजनी हनुमान संवाद आदि विशेष वर्णन के योग्य हैं।

11. **चान्द्र रामायण** • इसका रचनाकाल रैवत मन्वन्तर का 32वा त्रेता है। इसमें 75000 श्लोक हैं जिनमें हनुमत-चन्द्रमा संवाद है। केवट का पूर्वजन्म संस्कार, भरद्वाज समागम सम्पाति चरित्र एवं चन्द्रमा ऋषि का आगमन विशेष उल्लेखनीय हैं।

12 **मैन्द रामायण** इसके 52000 श्लोकों म मैन्द कौरव संवाद हैं। समय रैवत मन्वन्तर का 21वा त्रेता है। इसमें रामेश्वर माहात्म्य, रावण मंत्र, विभीषण मंत्र तथा हनुमान जी का वाटिका प्रवेश आदि विशेष रूप में वर्णित है।

13 **स्वयम्भुव रामायण** स्वायम्भुव मन्वन्तर के 32वें त्रेता में लिखी इस

रामायण के 18000 श्लोको में ब्रह्मा-नारद संवाद है। इसमें रावण को मुनि दण्ड मन्दोदरी-गर्भ से सीतोत्पत्ति कौशल्या हरण, दीर्घबाहु आदि के अद्भुत वर्णन है।

14 सुब्रह्म रामायण वैवस्वत मन्वन्तर के 13वें त्रेता में लिखी इस रामायण में 32000 श्लोक है। प्रयाग माहात्म्य एवं अनसूया-रहस्य विशेष प्रसंग हैं।

15 सुवर्चस रामायण इसके 15000 श्लोको में सुग्रीव तारा संवाद है। समय वैवस्त मन्वन्तर का 18वा त्रेता है। सीता दर्शन की तारा की उत्कण्ठा, वालि-तारा संवाद, सुलोचना-विलाप, भरत हनुमान संवाद, धोबी-धोबिन संवाद, रावण चित्रोल्लेखन पर शान्ता की चुगली, शान्ता के प्रति सीता का शाप, शान्ता का पक्षी बनना, लव कुश का युद्ध, महारावण युद्ध आदि प्रसंग विशेष द्रष्टव्य हैं।

16 देव-रामायण तामस मन्वन्तर के 6वें त्रेता मे रचित इसके एक लाख श्लोको मे इन्द्र-जयन्त संवाद है। इसमें जयन्त का काक बनना, राम परीक्षा, राम विजय, भरत विजय, शत्रुघ्न विजय, हनुमान विजय, अंगद व्यामोह, हनुमत्-राज्याभिषेक, भाषा-परिवर्तन-विधि-विशेष वर्णित हैं।

17 श्रवण-रामायण स्वायम्भुव मन्वन्तर के 40वें सतयुग में रचित इस रामायण में 125000 श्लोक है जिनमें इन्द्र जनक संवाद वर्णित है। श्रवण कुमार प्रसंग इसकी विशेषता है।

18 दुरन्त रामायण वैवस्वत मन्वन्तर के 25वे त्रेता में रचित इसके 62000 श्लोको मे वशिष्ठ जनक संवाद है। इसमे भरत महिमा, भरत शपथ, भरत विलाप, चूडामणि की कथा, मुद्रिका-चूडामणि का परिवर्तन हेतु, सीता दौर्बल्य, देवताओं के वानर होने का कारण, प्रयोजन आदि प्रसंग विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

19 रामायण चम्पू इसका समय श्राद्ध देव मन्वन्तर का प्रथम त्रेता है। इसके 15000 श्लोको मे शिव नारद संवाद है। रामायण चित्र वर्णन चम्पू का कार्य है। नारद व्यामोह प्रसंग, वीरभद्र की उत्पत्ति, सती-देह त्याग, दक्ष यज्ञ विनाश, त्रिपुर-उत्पत्ति, शिव पार्वती विवाह गणेश, कार्तिकेय उत्पत्ति, अरुण गरुड संवाद, कालनेमि छल इसके विचित्र प्रसंग हैं।

20. अध्यात्म रामायण यह रामायण एक आख्यान के रूप मे ब्रह्माण्ड पुराण—के उत्तर खण्ड के अन्तर्गत मानी जाती है। अतः इसके प्रणेता महर्षि वेद व्यास जी ही हैं। इसके वक्ता एवं श्रोता भगवान शिव एवं उनकी आदि शक्ति पार्वती जी हैं। सप्तसोपान बद्ध इसमे रामचरित्र वर्णन के साथ-साथ पद-पद पर भक्ति ज्ञान उपासना एवं सदाचार के दिव्य उपदेश हैं। प्रधानता अध्यात्म तत्व की ही है। इसमे भगवान राम मूर्तिमान 'अध्यात्म तत्व' है।

21 आनन्द रामायण इस रामायण के रचयिता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं अत. प्रमाण के अभाव में इसे महर्षि वाल्मीकि कृत शतकोटि राम चरित के अन्तर्गत मान लिया गया है जो केवल अनुमान पर आधारित है। इसके काण्डों के नाम प्रचलित रामायणों के काण्डो के नामो से भिन्न है जो क्रम से इस प्रकार है (1) सार खण्ड-13 सर्ग (2) यात्रा खण्ड-9 सर्ग (3) याग काण्ड-9 सर्ग (4) विलास काण्ड-9 सर्ग (5) जन्म काण्ड 9 सर्ग (6) विवाह काण्ड-9 सर्ग (7) राज्य काण्ड (पूर्वार्द्ध)-12 सर्ग (8) राज्य काण्ड (उत्तरार्द्ध) 13-24 सर्ग (9) मनोहर काण्ड-18 सर्ग (10) पूर्ण काण्ड-9 सर्ग। इस रामायण मे कई अद्भुत एव विचित्र कथाएं हैं।

22 अब्द रामायण कल्याण पत्रिका के जुलाई 1930 के श्री रामायणाक के पृष्ठ 304 पर श्री बी०एच० वाडेर ने अब्द रामायण का वर्णन किया है। इसे उन्होंने श्री गिरधर कृत बताते हुए लिखा है कि इसमे भगवान् रामचन्द्रजी के जीवन की अनेक रोचक घटनाओ का वर्णन है। तिथि पत्र इस रामायण की विशेषता है।

23/24. अग्नि वेश्य रामायण तथा लोमश रामचरित्र इन दोनो रामायणो का वर्णन भी श्री बी० एच० वाडेर ने उपरिलिखित रामयणाक के पृ० 302 पर किया है।

उपरिवर्णित रामायणो के अतिरिक्त सस्कृत के अनेकानेक महाकवियो ने राम चरित्र के गाता बनकर अपनी लेखिनी को पुनीत किया। स्थानाभाव के कारण हम केवल उनमें से कुछ के नाम उनके ग्रन्थों के सहित नाम ही परिगणित कर सकते हैं। कालिदास का 'रघुवश' भट्टि कवि का 'भट्टि काव्य' कुमारदास का 'जानकी हरण' अभिनन्द का 'रामचरित, भोज का रामायण चम्पू' क्षेमेन्द्र का 'रामायण मजरी' तथा 'दशावतार चरित्र' चक्रकवि का जानकी परिणय, मोहन स्वामी का 'रामरहस्य,' राजशेखर की 'बाल रामायण', वात्सल्यपरय का 'उदार राघव', शक्ति भद्र का आचार्य चूडामणि' एव रविषेण का पद्म चरित अथवा पद्मपुराण आदि ग्रन्थ अपनी सरसता, रसपेशलता एव काव्य-कौशल के कारण विशेष रूप से वरेण्य हैं।

वाल्मीकि रामायण सबधी अनेकानेक टीकाओ की सर्जना भी हुई है। इनमे से कतिपय अधोलिखित हैं (1) कतक टीका (2) नागोजी भट्ट की रामभिरामी व्याख्या (3) गोविन्द राम की भूषण टीका (4) शिवसहाय की रामायण शिरोमणी व्याख्या (5) माहेश्वर तीर्थ की तीर्थ व्याख्या (6) वन्दाल रामानुज की रामानुजीय व्याख्या (7) वरद राज कृत विवेक तिलक (8) त्र्यम्बकराज की धर्माकूत व्याख्या (9) रामानन्द तीर्थ की रामायण कूट व्याख्या। अन्य टीकाओ के नाम हैं (1) रामायण विरोध परिहार (2) रामायणसेतु (3) शृंगार सुधाकर (4) रामायण सप्त बिम्ब (5) मनोरमा। Reading in Ramayan के अनुसार इतनी टीकाएं और हैं जैसे

अहोवल की 'वाल्मीकि हृदय'(2)माधवाचार्य की रामायण तात्पर्य निर्णय व्याख्या। (3) श्री अप्पयदीक्षितेन्द्र ने अपनी व्याख्या मे रामायण को शिवपरक सिद्ध किया है। ऐसी भी टीकाए हैं जिनके लेखक अज्ञात है।

कालान्तर मे संस्कृत से विभिन्न प्रान्तों से विभिन्न जन भाषाओ का विकास हुआ जिनके कवि रामचरित की ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सके। वाल्मीकि रामायण से निसृत राम काव्य धारा संस्कृत-वाङ्मय के समानान्तर क्रमश पालि, प्राकृत अपभ्रंश तथा प्रान्तीय बोलियो म दुर्दमनीय गति से प्रवाहित होती रही। जैसे विशाल नद का जल वर्षा ऋतु म अपने कूलो की सीमा का उल्लघन कर आस पास के स्थलों को दूर-दूर तक निमीलत कर लेता है उसी प्रकार रामकथा की पावनधारा ने भारतेतर प्रदेशो (मध्य एशिया, जावा चीन, जापान, इण्डो-चाइना, सुमात्रा, ब्रह्मा, स्याम कम्बोडिया, लका आदि) को रसमिक्त किया।

प्राकृत-वाङ्मय के प्रवेश द्वार पर स्थित पाली मे लिखे बौद्धत्रिपिटक (तीसरी शती ई० पूर्व) के दूसरे पिटक सुत्तपिटक 'के खुद्दक निकाय' मे जातक (महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मो की कथाए) सगृहीत हैं। बौद्ध राम को महात्मा बुद्ध का अवतार मानते हैं। इन जातको मे से तीन 1 दशरथ जातक 2 अनामक जातक 3 दशरथ कथा तक राम कथा सबधी है। इनमे राम बनवास, सीता हरण, जटायु मृत्यु बाली-सुग्रीव युद्ध, सेतुबन्ध आदि के सकेत मिलते हैं। अन्य बौद्ध ग्रन्थ जैसे अभि-धर्म महाविभाषा एव अश्वघोष के काव्यो म राम-कथा प्रसगो के यत्र-तत्र दर्शन होते हैं।

हिन्दी में राम-काव्य

अवतारवाद की भावना का विकास सर्वप्रथम 'शतपथ-ब्राह्मण' मे मिलता है यहाँ प्रजापति क्रम से मत्स्य, कूर्म और वराह रूप धारण करते हुए चित्रित किए गये हैं। परवर्ती काल में विष्णु, मत्स्य, कूर्म और वराह अवतार धारण करते हैं। इसके उपरान्त विष्णु क्रमश राम और कृष्ण के रूप मे अवतरित होते हैं। इस प्रकार आरम्भिक आख्यानो म वीर और क्षत्रिय योधा के रूप मे वर्णित राम विष्णु के अवतार माने जाने लगे और धीरे धीरे उनमे ब्रह्मत्व की स्थापना हो गई। महाभारत म और पुराणो मे उन्हे इसी रूप मे वर्णित किया गया है। जहा तक रामभक्ति के साम्प्रदायिक रूप का प्रश्न है वह आठवी शताब्दी पश्चात् आरम्भ हुआ और अब तक अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। इस लगभग बारह सौ वर्षों के इतिहास को हम तीन युगों मे विभाजित कर सकते हैं —

1 आलवार युग (800-1100 ई०)
2 आचार्य युग (1100-1400 ई०)
3 रामावत् युग (1400—आधुनिक काल तक)

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर भारत में भागवत धर्म का ह्रास होने लगा अत वैष्णव साधना का गढ उत्तर से दक्षिण की ओर चला गया। यहाँ आलवारो ने रामभक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखा। सातवी-आठवी शताब्दी के लगभग शकराचार्य ने अद्वैतवाद का निरूपण किया पर उनका मायावाद भक्ति के सन्निवेश के लिए उपयुक्त न था क्योंकि मायावाद सगुण भक्ति के मार्ग मे बाधक था। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत की प्रतिष्ठा की और यह प्रतिपादित किया कि चराचर जगत उस ब्रह्म का अश है जिसे भक्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उनका सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमे विष्णु या नारायण की उपासना पर बल दिया गया था। इसी सम्प्रदाय मे श्री राघवानद जी हुए इन्हीं के शिष्य रामानन्द एक युग-प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। इन्होने लक्ष्मी-नारायण के स्थान पर राम सीता को प्रमुखता प्रदान की। इसी रामानन्दीय वैष्णव परम्परा मे कबीर और तुलसी का आविर्भाव हुआ। कबीर ने निर्गुण राम की उपासना को श्रेष्ठ बताते हुए निर्गुण सम्प्रदाय की नींव रखी। इसके विपरीत तुलसी ने राम की सगुण भक्ति को सर्वोत्तम सिद्ध करते हुए रामभक्ति शाखा की स्थापना की।

यद्यपि तुलसी से पूर्व भी राम-भक्त कवि हुए थे परन्तु उनमे से अधिकाश का राम-साहित्य प्राय अप्रकाशित और अप्राप्य है। प्राप्त साहित्य मे विष्णुदास द्वारा वाल्मीकि रामायण का हिन्दी रूपान्तर, ईश्वर दास कृत भरत मिलाप और अगद पैज, मुनि लावण्य द्वारा रचित रावण-मन्दोदरी सवाद, जिनराज सूरि कृत रावण-मन्दोदरी सवाद, ब्रह्मजिनदास का रामचरित या रामरास हनुमन्तराय तथा सुन्दरदास कृत हनुमान चरित महत्वपूर्ण हैं।

रामभक्ति शाखा की महानतम विभूति महाकवि तुलसीदास हैं। डा० ग्रियर्सन के अनुसार बुद्धदेव के बाद भारत मे सबसे बडे लोकनायक तुलसीदास थे। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता मे समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे,उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय,गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और सस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्व-ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाडाल का समन्वय, पाडित्य और अपाडित्य का समन्वय—'रामचरितमानस' आरम्भ से अत तक समन्वय का काव्य है।

तुलसी के राम अधम उद्धारण हैं जो हठपूर्वक पापियो का उद्धार करते हैं। उन्होने रूप की अपेक्षा नाम को श्रेष्ठ बताया है। उनके अनुसार 'ब्रह्म-राम ते नाम बड' है अर्थात् निर्गुण भाव से भजन किया गया हो या सगुण भाव से नाम की महिमा मे कोई सदेह नहीं।

उस युग मे प्रचलित ऐसी कोई भी काव्य-पद्धति नही थी जिस पर तुलसी ने अपनी छाप न लगाई हो। चद के छप्पय, कबीर के दोहे, सूर के पद, जायसी की दोहा-चौपाइया, रीतिकारो के सवैया-कवित्त, रहीम के बरवै, गाव वालो के सोहर आदि जितनी प्रकार की छन्द पद्धतिया उन दिनों लोक मे प्रसिद्ध थी सबको उन्होने अपनी सारग्राहिणी प्रतिभा के बल पर आत्मसात् किया।

रामचरितमानस कथा-काव्य की दृष्टि से अनुपमेय है। दार्शनिक मत की विवेचना और भक्ति-तत्व की व्याख्या भी इसके महाकाव्यत्व को धूमिल नही कर सके। यह उनकी असाधारण काव्य-कौशल सम्बन्धी दक्षता का ज्वलत प्रमाण है कि दर्शन और भक्ति के अपूर्व मिश्रण द्वारा उन्होंने अपने काव्य को भव्यता प्रदान की है। शुष्क तत्व-ज्ञान तुलसी को कभी भी नहीं भाया। जब कभी उसकी चर्चा करते हैं तो कवित्वमय वाणी ग्रहण करके। उपमाओ और रूपको के प्रयोग से उन्होने अपने विषय को अत्यत प्राजल, सरस और अमल बनाया।

चरित्र-चित्रण मे तुलसी बेजोड़ हैं, उनके सभी पात्र हाड़-मांस के बने हमारे जैसे ही हैं। उनमें जो अलौकिकता है वह भी मधुर और नितात स्वाभाविक है। उनके पात्रो के प्रत्येक आचरण मे कोई-न-कोई विशेष ध्येय होता है। मानव-जीवन के किसी-न-किसी पक्ष को वे आलोकित करते हैं अथवा किसी-न-किसी सामाजिक या वैयक्तिक कुरीति की कटु आलोचना। लीला के लिए लीला गान उन्होंने कहीं नही किया, वे आदर्शवादी थे और अपने काव्य से भावी समाज की सृष्टि कर रहे थे। आज का उत्तरभारत तुलसी द्वारा निर्मित हुआ है, वही इसके मेरुदण्ड हैं।

भाषा की दृष्टि से भी तुलसी सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य मे अपना सानी नही रखते। उनकी भाषा जितनी लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय भी। संस्कृत के मिश्रण ने उसे अपूर्व माधुर्य, ध्वन्यात्मकता, सगीतात्मकता और साहित्यिकता प्रदान की है। उनकी भाषा प्राय विषय के अनुकूल परिधान पहनती चलती है। तुलसी से पहले किसी ने भी इतनी मजुल और परिमार्जित भाषा का प्रयोग नही किया था।

अत मे हम डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे कह सकते हैं, "तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पंडित-सुधारक थे, लोक नायक थे और भविष्य के स्रष्टा थे। इन रूपों मे उनका कोई भी रूप किसी से घटकर नही यही कारण है कि उन्होंने सब ओर से समता की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय काव्य की सृष्टि की जो अब तक उत्तर भारत का मार्ग-दर्शक रहा है और उस दिन भी रहेगा जिस दिन नवीन भारत का जन्म होगा।"

तुलसीदास जी की निम्नलिखित रचनाए प्रसिद्ध हैं —

(1) दोहावली (2) कवितावली (3) गीतावली (4) रामचरितमानस (5) विनय-पत्रिका (6) रामलला नहछू (7) पार्वती मगल (8) जानकी मगल (9) बरवै रामायण (10) वैराग्य सदीपिनी (11) कृष्ण गीतावली (12) रामाज्ञा प्रश्नावली।

तुलसी के काव्य मे राम-भक्ति की परम्परा और उसका उत्कर्ष चरमसीमा को छू चुका था। उनके पश्चात् राम-काव्य का कुछ समय तक समुचित विकास न हो सका। इस माला के परवर्ती कवियो मे तुलसी के समकक्ष अन्य कोई कवि आ नही सका। परवर्ती रामभक्त कवियो मे अग्रदास (स० 1632) नाभादास (स०1657)प्राणचद चौहान(स० 1667) हृदयराम(स०1680)और लालदास की गणना की जाती है। अग्रदास ने ध्यान मजरी रामध्यान मजरी, कुडलिया नामक रामकथा सबधी ग्रथ लिखे। भक्तमाल के रचियता नाभादास ने भी रामभक्ति विषयक अनेक पदो की रचना की। प्राणचन्द चौहान ने रामायण महानाटक और हृदयराम ने हनुमन्ननाटक की रचना की। लालदास ने अवधविलास नामक रामकाव्य लिखा। तुलसीदास तथा इनके परवर्ती भक्त कवियो के पश्चात् रामकाव्य की रचना करने वालो म केशवदास का नाम उल्लेखनीय है। केशव ने वाल्मीकि रामायण और तुलसी रामचरितमानस से प्रेरणा प्राप्त करके एक प्रबन्ध काव्य क रूप मे रामचन्द्रिका की रचना की। यद्यपि केशव एक उच्चकोटि के विद्वान और कवि थे तथापि प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका सफल महाकाव्य नही कहा जा सकता। उन्होने अनेक प्रकार के छन्दो की योजना और विविध अलकारो के विधान मे पाडित्य प्रदर्शन की चेष्टा की। फलस्वरूप कथा की प्रबन्धात्मकता को पग पग पर आघात पहुचा है। काव्य की दुरुहता के कारण उन्हे 'कठिनकाव्य का प्रेत' की सज्ञा आलोचको ने प्रदान की। जो प्रसग 'मानस' म बहुत मनोरम, सरस और भावपूर्ण हैं वे केशव की रामचन्द्रिका मे शुष्क, नीरस और आभाहीन हो गये हैं। भक्त न होने के कारण उन्होने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे नही प्रत्युत राजकुमार तथा महाराजा के रूप मे अकित किया है। राम और सीता का आदर्श चित्र प्रस्तुत न कर के उन्हे साधारण प्रेमी प्रेमिका के रूप मे अकित किया।

। केशव अलकारवादी कवि थे अत उन्होने रामचन्द्रिका मे भावो तथा रसो की व्यजना की ओर अधिक ध्यान न देकर अलकार प्रदर्शन को ही अधिक महत्त्व दिया है। उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि अलकारो की असयत योजना से उन का प्रकृति वर्णन अस्वाभाविक और नीरस हो गया है। तुलसीदास ने भक्तिकाल मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जो लोक सग्रही स्वरूप मानस मे चित्रित किया था, वह रीतिकालीन शृगारी कवियो की मनोवृत्ति के अनुकूल नही पड सका। फलस्वरूप यद्यपि इस काल मे राधा और कृष्ण के नाम पर अनेक शृगारी रचनाए

निर्मित हुई तथापि राम तथा सीता को लेकर कोई प्रमुख रचना न लिखी जा सकी फिर भी कुछ कवियों ने इस काल मे राम कथा सम्बन्धी काव्य प्रस्तुत किए। इन कवियो मे *रीवा नरेश महाराज विश्वनाथसिंह, अयोध्या के महत रामचरण* दास और जीवाराम का नाम लिया जा सकता है। महाराज विश्वनाथसिंह ने रामस्वयवर नामक प्रबन्धकाव्य तथा आनन्द रघुनदन नामक नाटक लिखे।

रामभक्ति शाखा म रहस्य साधना के व्यवस्थित प्रवर्तक 'मानस' के टीकाकार जानकी घाट अयोध्या के श्री रामचरण दास कहे जाते हैं। इन्होंने हास्य भाव या मधुर भाव की उपासना चलाई। राम को पति के रूप में और अपने को पात्र के रूप म इस उपासना मे भक्त कल्पित करता है साथ ही वह सीता जी स सपत्नी का भाव दूर करता है। रामचरण दास ने बहुत से ग्रन्थो को प्राचीन बताकर रहस्योपासना को प्राचीन सिद्ध किया है। इस सम्प्रदाय का नाम स्वसुखी शाखा है। इस शाखा मे निम्नलिखित ग्रन्थों की कल्पना की गई है —(1) लोमश सहिता (2) हनुमन्त सहिता (3) अमर रामायण (4) भुशुडि रामायण (5) महारामायण (6) कोसल खड (7) रामनवरत्न (8) महारासोत्सव।

सख्य भाव की उपासना को सखि भाव की उपासना में परिणित कर चिरान *छपरा के जीवाराम ने तत्सुखी शाखा का प्रवर्तन किया इस उपासना का अधिक* प्रचार अयोध्या के लक्ष्मण किला के श्री युगलानन्य शरण ने किया। रीवा के महाराज श्री रघुराज सिंह भी इनके प्रभाव मे थे। उन्होने चित्रकूट मे प्रमोदवन आदि सखी भावोपासना के अनुरूप कई स्थानो का निर्माण कराया। चित्रकूट वृन्दावन का केलिकुज हो गया। ये लोग कृपानिवास को अपना आदि आचार्य बताते हैं जिनके नाम म कृपानिवास पदावली छपाई गई है। इस प्रकार रीतिकाल की परिस्थितियो क अनुकूल न होने पर भी रामकाव्य धारा इस युग मे भी सर्वथा सूखने नही पाई है।

आधुनिक काल मे राम के चरित्र को लेकर अनेक काव्यो की रचना हुई। 1920 ई० म वाल्मीकि रामायण तथा तुलसी के रामचरित मानस को आधार बनाकर श्री रामचरित उपाध्याय ने रामचरित चितामणि नामक प्रबन्ध काव्य की रचना की। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो के होने पर भी यह इस दृष्टि से इसे सफल कृति नही कहा जा सकता। 1937 ई० मे रामनाथ ज्योतिषी ने रामचन्द्रोदय काव्य की रचना ब्रजभाषा मे की। इस मे शृगार रस की प्रधानता है। इसमे राम सीता को साधारण नायक नायिका के रूप मे चित्रित किया गया है। वैदेही वनवास मे अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने राम को एक आदर्श राजा और सीता को आदर्श पत्नि के रूप मे प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग की नवीन विचारधारा क अनुकूल इसमे परम्परागत रामकथा को अधिक बुद्धि ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है।

तुलसी के 'मानस' के पश्चात् रामकाव्य परम्परा मे 'साकेत' ही एक महान महाकाव्य माना जा सकता है इसकी रचना मैथिलीशरण गुप्त ने की है। गुप्त जी ने रामकथा को वर्तमान युग की बौद्धिक विचारधाराओ के अनुसार भव्य रूप देने का प्रयास किया है। 'साकेत' मे गुप्त जी ने यद्यपि उर्मिला और लक्ष्मण के चरित्र को प्रमुख स्थान दिया है फिर भी राम और सीता को उनके उच्च स्थान से नीचे नही उतरने दिया। गुप्त जी वैष्णव कवि थे। राम के प्रति उनके हृदय में अगाध भक्ति और श्रद्धा थी। राम के ब्रह्मत्व मे विश्वास रखते हुए भी उन्होंने राम को एक आदर्श महापुरुष के रूप मे अंकित किया है।

बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'साकेत-संत' भी रामकथा सम्बन्धी प्रबन्ध-काव्य है इसमे भरत को नायक के रूप मे चित्रित किया गया है। इन के अतिरिक्त कुछ खडकाव्य भी लिखे गये हैं जिन का सम्बन्ध रामकथा से है। बलदेवप्रसाद मिश्र कृत 'कौशल-किशोर' मे राम की किशोरावस्था का वर्णन है। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'पचवटी' मे राम-लक्ष्मण और सीता के वन जीवन तथा शूर्पणखा के साथ राम और लक्ष्मण के सवाद को प्रमुखता प्रदान की गई है। निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' मे राम के धीर, गम्भीर और वीर रूप का अकन हुआ है। पत जी ने भी 'पुरुषोत्तम राम' (1967 ई०) में भगवान की गौरव गरिमा को चित्रित किया है।

इस प्रकार रामकथा पुरातनकाल से लेकर वर्तमानकाल तक निरन्तर भारतीय काव्य को अनुप्राणित करती चली आ रही है। हिन्दी के अनेकानेक कवियो ने भी मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के पावन चरित्र से प्रेरणा प्राप्त की है।

पाचवी शती मे प्रवर सेन ने महाराष्ट्री प्राकृत मे 'सेतुबन्ध' काव्य की रचना की। इसमे वाल्मीकी रामायण के युद्ध काण्ड की कथा का 15 सर्गों मे सविस्तार वर्णन है। प्राकृत मे विमल सूरिकृत 'पउम चरियं' का वही महत्त्व है जो संस्कृत मे वाल्मीकी रामायण का। इस चरित-काव्य मे पौराणिक एवं शास्त्रीय प्रबंध दोनो के लक्षणों का समावेश है। कवि ने कथा वस्तु मे किंचित परिवर्तन करके उसको बुद्धिवाद के धरातल पर प्रतिष्ठा की है। इसके अतिरिक्त रामकथा का वर्णन 'अद्भुत रामायण' जैन उत्तर पुराणों, सीता चरित एवं वासुदेव हिन्डी मे प्राप्त होती है। प्रवर सेन का सेतुबंध, महेश्वर का सीताहरणम्, शिलाचार्य का चउपण्ण महापुरिस चरियम भी रामकथा से मंडित होता है।

अपभ्र श मे स्वयम्भूदेव कृत 'पउम चरिउ' की महनीयता सर्वस्वीकृत है। इस कृति का अन्य प्रसिद्ध नाम 'स्वयम्भू—रामायण' है। कतिपय विद्वानो की मान्यता है कि इस रामायण ने तुलसी को प्रभावित किया होगा क्योंकि राहुल जी के मतानुसार जिस सूकर क्षेत्र मे गोस्वामी जी ने रामकथा सुनी थी, वहां जैन घरो मे 'स्वयम्भू रामायण' पढी जाती थी।

दक्षिण भारत की सर्वाधिक व्यापक भाषा तमिल में 'कम्ब रामायण' का वही महनीय स्थान है जो उत्तर भारत में रामचरितमानस का। कम्बन् कवि ने इसकी रचना सन् 880 के आसपास की। शालिवाहन स० 800 के फाल्गुन में श्रीरंगम के प्रसिद्ध क्षेत्र तथा मन्दिर में जब यह रामायण वहां एकत्रित विद्वानों को सुनाई गई तो श्रोताओं ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कवि को 'कवि चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया। इस रामायण में वाल्मीकि रामायण के प्रथम छह काण्डों की कथा ग्रहण की गई है। यह रामायण अनुवाद मात्र नहीं है प्रत्युत् तमिल भाषा का स्वतन्त्र महाकाव्य है।

तेलुगू साहित्य में राम कथा को शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ है अतः राम कथा से सम्बन्धित इस भाषा में लगभग चार सौ रचनाएं हैं। इनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित हैं। 1 नन्नया का राघवाभ्युदम 2 तिक्कना का निर्वचनोत्तर रामायण, 3 एर्रना की संक्षेप रामायण, 4 गोनबुद्ध रेड्डि की रंगनाथ रामायण, 5 कट्टि पापुराज की उत्तर रामायण, 6 हुलक्कि भास्कर की भास्कर रामायण, 7 गोपीनाथ वेंकट की गोपीनाथ रामायण 8 कूमरि तिम्मकवि की अच्च तेलुगु रामायण, 9 आतुकुरि मोल्ला की मोल्ल रामायण, 10 अर्यल राजु रामभद्र का राघवाभ्युदम, 11 कट्टावरदराजु की द्विपद रामायण, 12 रघुनाथ नायक की रघुनाथ रामायण, 13 श्रीपाद कृष्ण मूर्ति की 'रामायण', 14 विश्वनाथ सत्यनारायण का रामकल्प वृक्ष।

तेलुगु का राम-काव्य 11वीं सदी में आदि कवि नन्नया से लेकर अब तक में अनेकों कवियों द्वारा लिखा गया है। इन सब रामायणों का प्रमुख आधार प्रायः वाल्मीकि रामायण ही है।

मलयालम में रचित 'रामचरित'या रामचरित सबसे प्राचीन है। त्रावणकोर के किसी राजा ने इसकी रचना 14वीं शती में की थी। इसमें वाल्मीकि रामायण की युद्ध काण्ड तक की कथा का विकास किया गया है कन्नड की अन्य रामायणें संस्कृत की रामायण के अनुवाद मात्र हैं। रामानुजन एषुत्तच्छन कृत 'अध्यात्म रामायण' भी संस्कृत की अध्यात्म रामायण का रूपान्तर है। कन्नास-रामायण तथा 'केरलवर्मा रामायण' वाल्मीकि रामायण का स्वतन्त्र अनुवाद है।

कन्नड भाषा में 'पउम चरिउ' को आधार बना कर लिखी गई नागचन्द्र की 'पम्परामायण' (रामचन्द्रचरित पुराण) पर्याप्त प्रसिद्ध है। तोरवे निवासी कवि नरहरि कृत 16वीं शती में रचित 'तोरवे रामायण' सर्वाधिक प्रसिद्ध है इनका अन्य नाम 'कन्नलेश्वर है और इन्हें कुमार वाल्मीकि की पदवी से विभूषित किया गया था। उन्होंने अध्यात्म एवं आनन्द रामायणों को अपना उपजीव्य बनाया। 'मैरावण-काव्य' में चार सन्धियों में हनुमान द्वारा मैरावण-वध का वर्णन है। इसके अतिरिक्त कन्नड में तिरुमल वैद्य और योगेन्द्र ने दो उत्तर रामायणों की भी

रचना की।

श्री राम कथा सम्बन्धी साहित्य असमिया भाषा मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होता है यथा

1. माधव कदली रामायण कृत माधवकदली 14वी पू०
2 शकर देव 14वी पू०
3. माधव देव 16वी शती
4 अनत कदली कृत रामायण 16वी श०
5 दुर्गाव कृत गीति रामायण 16वी शती
6 अनत ठाकुर आता की कीर्तिनिया रामायण 17वी शती
7 रघुनाथ महन्त की गद्य कथा रामायण 17वी शती
8. रघुनाथ महन्त की अद्भुत रामायण 17वी शती
9 रघुनाथ महन्त की शत्रुजय 17वी शती
10. गंगाराम कृत सीता वनवास 17वी शती
11 भवदेव का अश्वमेध यज्ञ
12 असमिया कृतिवास पण्डित कृत अगद-रावण
13. धनजय का गणक-चरित्र

इनके अतिरिक्त 16वी शती मे रामचरित के आधार पर निम्नलिखित नाटक भी लिखे गये।

1. राम विजय नाटय (सीता स्वयवर) श्री शकर देव कृत 2 राम भावना आनन्द कन्दली कृत सीता पाताल प्रवेश तथा अहिरावण वध।

बगला मे अधोलिखित रामायणो की रचना हुई।

1. कृत्तिवासी रामायण (15वी श०)
2. रामरसायन (रघुनन्दन गोस्वामी)
3 चन्द्रावली कृत रामायण
4 रामानन्द कृत राम लीला।
5. कविचन्द्र अगदेर वैर
6. जगतराम कृत रामायण।

सबसे अधिक प्रसिद्ध कृतिवासी रामायण ही है जो जनता का कण्ठहार बनी हुई है। यह बगला के प्रख्यात छन्द 'पयार' मे है तथा इसमे कई अद्भुत कथाओ का मिश्रण है जैसे हनुमान जी का सजीवनी लाते समय सूर्य को कोख मे दबाए रखना ताकि सूर्योदय न हो।

उडिया भाषा मे रचित दण्डी रामायण या जगन्मोहन रामायण की अत्यधिक महिमा है। इसके रचयिता बलराम दास (15वीं श०) को उत्कल वाल्मीकि की उपाधि से विभूषित किया गया है। विलक रामायण एव विचित्र रामायण

भी पर्याप्त लोक प्रसिद्ध है।

मराठी में रचित एकनाथ जी की भावार्थ रामायण जो 40,0000 ओवियों (मराठी का एक छद) में छन्दोबद्ध है महाराष्ट्र में अतिशय प्रिय है। बाल्मीकि, अध्यात्म आनन्द रामायणों एवं योग वशिष्ठ आदि अनेक ग्रंथों में वर्णित कथाओं को चुन कर कवि ने एक अद्भुत मौलिक रामायण की रचना की है। इसका रचना काल स० 1645 से 1655 के बीच का है। पूरी की पूरी रामायण एक रूपक भी है। जैसे कौशल्या –सिद्धियां, कैकेयी=अविद्या, सुमित्रा=शुद्धमेधा, मन्थरा=कुविद्या, लक्ष्मण=आत्मबोध, भरत=भावार्थ, राम=पूर्ण आनन्द विग्रह।

मराठी में अन्य राम कथा विषयक साहित्य निम्नलिखित है :—

1 मुक्तेश्वर कृत रामायण जिसमे 1725 श्लोक है।

2. श्रीधर कृत राम विजय (स० 1760)

. समर्थ रामदासजी कृत सुन्दर काण्ड एव युद्ध काण्ड तथा अनेक अभंग पद, करुणाष्टक, स्तोत्र, सवैया आदि।

4 मोरोपन्त (1786-1851) बड़े विख्यात विद्वान, साहित्यज्ञ, छन्द शास्त्र में निष्णात राम भक्त थे।

इन्होंने 108 रामायणें लिखी थी जिनमे से कुछ तो बहुत ही छोटी दस बीस श्लोकों की हैं और कुछ दो-चार सहस्र श्लोको में रचित हैं। इन सब की श्लोक संख्या 16,000 के लगभग होगी। इनकी रामायणो के नाम छन्दो पर है जैसे आर्या रामायण, अनुष्टुभ रामायण, विद्युन्माला रामायण, दिण्डी रामायण इत्यादि। प० लक्ष्मी रामचन्द्र पागारकर के अनुसार, "मोरोपन्ती रामायण मानो विश्वकर्मा की अद्भुत सृष्टि है।"

गुजराती में रचित रामकथा विषयक साहित्य में सबसे अधिक प्रसिद्धि गिरिधर दास कृत (18वी शती) रामायण को प्राप्त हुई। अन्य रामकथा गायक हैं 16 श० के भालण, उद्धव एव रत्नेश्वर, 18वी श० के प्रीतमदास, 19वी श० के रणछोड़भक्त।

रामकथा के गायक भारत की उपभाषाओं में भी विद्यमान हैं जिनके नाम और कृतिया निम्नलिखित हैं।

1. प० चन्दा झा कृत मैथिली रामायण, 2. आचार्य रामलोचन शरण कृत मैथिली रामचरितमानस, 3. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह कृत भोजपुरी रामायण, 4 हाड़ोती में रामायण, 5 नेपाली में भानुभक्त, (1971 से 1924 वि०) की रामायण तथा अध्यात्म रामायण का नेपाली अनुवाद, 6. हरियाणवी मे अहमद बक्श थानेसरी कृत रामायण, 7 पजाबी में स० 1662 से लेकर स० 1017-19 तक रामकथा साहित्य की सर्जना होती रही। (लेखकों तथा उनकी कृतियों के

नामों के लिए देखिए सारणी 'ख' 8. सिन्धी म भक्त कोकिल कृत कोकिल कलश।

फारसी मे रचित रामायण निम्नलिखित हैं

1 मुल्ला अब्दुल कादिल बदायुनी (1589 ई०) कृत बाल्मीकि रामायण का पद्यबद्ध अनुवाद, 2 फारसी गद्य में रामायण (1334 ई०), 3 मुल्ला मसीहि कृत रामायण मसीहि 1620 प्रकाशित 1899 ई०, 4 चन्द्रभान बेदिन कृत बेदिल रामायण (1690 ई०), 5 अमर सिंह कृत रामायण अमर प्रकाश (1705) 6 अमानतराय कृत रामायण, 7 बेलीराम मिश्र सुपुत्र रामदास कृत रामायण (1864)।

ससार की अन्य भाषाओ म भी रामकथा निबद्ध हुई जैसे अंग्रेजी, चीनी, फ्रेंच, स्पेनिश, डच, रूसी। फ्रेंच में सन् 1903 में आ० रूसेल ने बाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया। 1950 मे कु० शारलोत वोदविल ने मानस क अयोध्याकाण्ड को अनूदित किया। रूसी विद्वान बारान्निकोव द्वारा रामचरितमानस का रूसी अनुवाद भी प्रशसनीय है। चीनी भाषा को रामायण व सबसे प्रथम अनुवाद का गौरव प्राप्त होता है। यह अनुवाद सन् 251 में हुआ था। इण्डोनेशिया के कवि योगीश्वर ने 9वी श० मे 'रामायण का काविन्' की रचना की। हमारी इस शती मे रामायण का सिंहली अनुवाद सी० डान बॅस्टिमयन ने किया।

राम-काव्य परम्परा मे 'पौरुषेय रामायण' का स्थान

सुकवि नरहरदास बारहट के जीवन के विषय म अन्त साक्ष्य एव बाह्य साक्ष्य के आधार पर केवल कतिपय तथ्य प्राप्त होते हैं जो निम्नलिखित हैं —

ये रोहड़िया शाखा के चारण 'लखा' जी के सुपुत्र थे। ये जोधपुर नरेश महाराजा गजसिंह के आश्रित थे। राज कृपा से इन्हे 'टहला' गाव उपहार के रूप मे मिला। इनकी कोई सन्तान नही थी। छोटे भाई का नाम गिरधरदास था। इनका जन्म स० 1948 के लगभग हुआ।

अवतार चरित्र के अन्त में उनके अपने कथन से विदित होता है कि उन्होंने अवतार चरित्र की समाप्ति स० 1733 में की

सतरह सैं तैंतोस नियत सवत् उत्तरायन ॥
ऋतु ग्रीषम आषाढ मास पक्ष कृष्ण सुपावन ॥
वनि आठै तिथि भोमवार-सिधि जोग समगल ॥
पुहकर रन्य प्रसिद्ध मध्य पूजित भुवमडल ॥
अवतार चरित्र धोईसए, विजय सुजस जग विस्तरयो ॥
कविदास दास नरहर सुकवि, कृत उधार अपनो करयो ॥

(अवतार चरित्र, पृ० 520)

कवि की जाति 'बारहट' है जैसा कि कवि स्वय कहता है

चारन जाति सुवारहट ।
नरहरि मति अनुसार ॥
मैं सायर पैरन लग्यौ ।
वहन चरित अवतार ॥

(अवतार चरित्र, पृ० 4)

ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का आधार बनाकर उन्होंने अपने इस ग्रन्थ का निर्माण किया —

जथा सकति नरहर सुकवि । कहि अवतार सरुप ॥
जिहि जिहि ग्रन्थनी जे सुने । रिष प्रनीत अनुरूप ॥

(अ० च०, पृ० 5)

कवि के अनुसार इस ग्रन्थ म 16861 (16861) छन्द है। पुराणा म से जो कुछ कवि ने सुना उसी का उन्होंने वर्णन किया है।

सोर सहस अरू आठ सैं । इकसठ्ठ ऊपर आनि ॥
छंद अनुष्टु पर करि सकल । पूरन ग्रंथ प्रमानि ॥
मैं जोइ सुन्यो पुरान म । कृत सोइ वर्णन कीन ॥
श्रोता पाठक हेत सो । पावैं भक्ति प्रवीन ॥

(अ० च०, पृ० 52)

कवि के गुरु का नाम 'गिरिधर दीक्षित' था

य प्रथम गुरु देव से व सुहृदय विधाय प्राप्यान्यह ॥
श्रीमत् मज सु दीक्षित गिरिधर त स प्रसादेवर ॥
तद्रिष्ट स पय माध्य करण विघ्नस्म हरण पर ॥
श्री सुर सेव्य पदारविंद विमल सरणागत यस्यह ॥

(अ० च०, पृ० 1)

ब्रह्मा विष्णु अस विश्वनाथ ऋषि सहस अठ्यासी ॥
अमर कोटि तैंतीस पथ पालग परगासी ॥
नव दुर्गा नवनाथ द्विज सुगुरु गिरधर दीक्षित ॥
दया करहु मुहि जानि दास हरि विघ्न मान हित ॥
कीडा सुकृष्ण जदुनाथ की, जो पुरानमति जानि हौ ॥
हरि कृपा जन्म उद्धार हित, बुद्धि प्रमान वखानि हौ ॥

(अ० च०, पृ० 389)

कवि ने ऋषि प्रणीत ग्रंथों का अध्ययन किया ऐसा उपरिलिखित सदर्भों से ज्ञात होता है। निश्चित ही उन्होंने गुरु मुख स या स्वय वेद उपनिषद् षड्विद्या आदि का ज्ञान प्राप्त किया। पुराणों के बारम्बार वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके ग्रन्थ का मुख्य आधार पुराण ही हैं। बहुश्रुत एव बहुपठित होने के नाते

उन्होंने अपने पूर्ववर्ती एव समकालीन कवियो के काव्यो का भी अवश्य अनुशीलन किया होगा।

कवि का देहावसान स० 1733 तथा स० 1735 के बीच में हुआ होगा।

नरहरदास बारहट की पौरुषेय रामायण

पुत्रहीनता विषयक भावज के व्यग्य वाण से आहत सुकवि नरहरदास बारहट ने भामह, रुद्रट, मम्मट आदि साहित्य शास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित काव्य प्रयोजनो म से यश प्राप्ति को प्रमुख मानकर अपने एक मात्र ग्रन्थ 'अवतार चरित्र' का प्रणयन 18वीं शती के पूर्वार्द्ध मे किया। पर्याप्त समय तक राजस्थान मे उनके नाम का बोलबाला रहा। यहा तक कि प्रत्येक कवि कीर्ति-लिप्सु के लिए नरहर दास के इस ग्रन्थ का अध्ययन अनिवार्य माना जाता रहा। दुर्भाग्यवश इस महान कवि की ख्याति राजपूताने तक ही सीमित रही क्योकि मिश्रबन्धुओ को छोडकर हिन्दी साहित्य के अन्य प्रमुख इतिहास लेखक रामचन्द्र शुक्ल आदि ने इनका नाम तक भी अपने ग्रन्थो म वर्णन नही किया। केवल 1950 म डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक (राजस्थान का पिंगल साहित्य) मे कुछ विस्तार के साथ इनका परिचय तो दिया परन्तु साथ ही यह प्रमाणित करके कि नरहरदास ने तुलसी और केशव का अन्धानुकरण किया है परवर्ती इतिहास लेखको और आलोचको के मन म कवि के प्रति उपेक्षाभाव भर दिया जिसके फलस्वरूप इस सुकवि के मूल ग्रथ रत्न को परखने तक की भी चेष्टा नही की गई।

सुकवि नरहरदास ने जिन्हे हम यदि ब्रजभाषा का तुलसी कहे तो अत्युक्ति न होगी, 'अवतार चरित्र' म 16861 छन्दो म विष्णु के चौबीस अवतारो से सबधित कथाओ का वर्णन किया है। 520 पृष्ठो के इस ग्रन्थ म 22 अवतारो की कथाए 83 पृष्ठो मे लिखी गई है। कृष्णावतार के लिए कवि ने एक सौ छब्बीस पृष्ठ समर्पित किए है शेष अर्थात तीन सो ग्यारह पृष्ठो म रामावतार चरित्र अनुस्यूत है जिसे कवि ने पौरुषेय रामायण की सज्ञा से अभिहित किया है। पौरुषेय रामायण के अभिधान द्वारा कवि ने महर्षि वाल्मीकि की आर्ष रामायण से पार्थक्य स्थापित करने की चेष्टा की है—पौरुषेय रामायण अर्थात साधारण पुरुष द्वारा निर्मित रामायण। पृष्ठ सख्या द्वारा स्पष्ट है कि 'अवतार चरित्र' का प्रमुख प्रतिपाद्य भगवान राम की लीला का गायन ही है। शेष अवतारो का वर्णन औपचारिक मात्र ही कहा जा सकता है।

लगभग दस सहस्र छन्दो म रचित पौरुषेय रामायण परिणाम की दृष्टि से केशव की 'रामचन्द्रिका' से कही बडी है और तुलसी के 'मानस' की तुलना मे लगभग दुगनी ठहरती है। 'सूरसागर' म भी अभी तक लगभग छह सहस्र पद ही प्राप्त होते है। प्राय कहा जाता है कि तुलसी के पश्चात राम की अमर गाथा गाने

सवैया नकारा नहीं गया तथापि अर्थालंकारों के द्वारा ही कवि ने अपने भावों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। सब्दालंकार का प्रयोग बहुधा काव्य में रमणीयता का संचार करता है।

इस कृति में इन चौदह छन्दों का प्रयोग किया गया है—गाथा, कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, पद्दरी, बैताल, कुंडलिया, उद्देश्य, द्विअक्षरी, सारोस, भुजंगी, छन्द अर्धनाराच। इनमें से केवल तीन सवैया, भुजंगी तथा अर्धनाराच वर्णिक हैं शेष सभी मात्रिक हैं। आश्चर्य है कि पौरुषेय रामायण के छिन्दविधान में रासोकाव्य परम्परा का प्रमुख प्रभाव ग्रहण करते हुए भी कवि ने उनके समान वर्णिक छन्दों का प्रचुर प्रयोग नहीं किया। पद्दरी छन्द को ही सबसे अधिक अपनाया गया है।

बहुपठित-बहुश्रुत एवं शब्द प्रयोग मर्मज्ञ होने के कारण कवि ने अपने काव्य की अभिव्यक्ति में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। विविध भाषाओं एवं प्रादेशिक बोलियों के तत्कालीन प्रयोगों से उसकी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति अत्यन्त समृद्ध हुई है। शब्द शक्ति, गुण, वृत्ति आदि काव्य शास्त्रीय अंगों का सहज प्रयोग ही इस काव्यकृति में हुआ है। लोकप्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों ने इस में स्वाभाविकता, तरलता एवं मधुरता का समावेश किया है।

यद्यपि इस रामायण में मोक्ष के तीन मार्ग—कर्म, ज्ञान और भक्ति बताए गए हैं तथापि इन तीनों में से भक्ति को ही सबसे सुगम बताया गया है। पौरुषेय रामायण की परिसमाप्ति पर राम के चरणों की भक्ति को ही कवि ने अपना सर्वस्व माना है।

काव्य सौष्ठव के कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं।

राम के किशोर रूप का वर्णन तथा नयनाभिराम है —

नील जलद तन स्याम, मंद मुख हास विलासित।
बसन पीत कौसेय कनक कुंडल मकराकृत॥
उर विशाल उन्नत भाल लोचन कमलाकृत॥

{बाल०}

कटि निखंग कर धनुर्बान भुज जानु प्रलंबित॥

भ्रातृ हृदय का चित्रण भी अवेक्षणीय है —

मागन आज्ञा मात राम सिय लखन सिधारे।
बार बार लैलें बलाद गोदनि बैठारे।
अविलोकित नहीं दृग आघात उर भेटति अंगनि।

(अयोध्या० 168-69)

मानहु बिछुरी बिहूँ प्रमाद निधि पाई रतन।
ज्यों हरि स्वरूप फल रोकिहैं। जरिचित वहि चन्द्रचकोर॥

करतार होइ जैसो चन्द्र फिर त्रिपुरवदन विलोकि है।
चकोर फिर त्रिपुरवदन विलोकि है।

स्तोत्रों की संस्कृत गर्भित भाषा का सरस प्रवाह भी अवलोकनीय है —

हरे अनन्त विग्रह, नमामि आततायई।
सत्यद सुपारकर, अमोघ सिद्धि आकर।
मदोष भक्ति मोचन, सुरारि वृन्द शोचन॥
हरमेव पाद पंकज, नमामि देव मातृज।
भजति भूत भावन, अपावन सुपावन। (अवध०, पृ० 171)

प्रकृति के उद्दीपन रूप के चित्रण द्वारा शृंगार रस का अभिव्यञ्जन स्वर्गीय बसन्त की पृष्ठभूमि के अत्यन्त सफलता से हुआ है। प्रथम मिलन की स्थिति अत्यन्त भाव अभिव्यंजी था है :—

वनि बैठ सीता परिषद बनाइ। इक समय सिखियाँ सीय लीन्ह आइ॥
तहाँ होन लगे घन गगन घोर। फिर मग मयूरि मयूर मोर॥
विस्तार जलद विद्युत विलास। अति सिमिटि बरि बरि प्रकाश॥
तरुलता गुल्म कुसुमित तमाल। मधुमत्त भ्रमर मिलि मधुरताल॥
उत्तर दिश आतुर अनिल आइ। गति-कम्प सीत मानो सुभाइ॥
आगा अदृश्य मिलि अन्धकार। घोर गहिन् प्रकाश पयोधार॥
इस इहा सीता सुग्धा अनूप। अति दन्ति अति उठि काम रूप॥
उर मिलत सीता मुनि मन अनग। भयो बहुदर्प, तन गहो अंग॥
सब परसी प्रेम प्यारी हिआन। अति काम गात वैवर्ण मान॥
(बाल० 35)

असमय में निद्रा भंग होने पर कुम्भकर्ण का आहार विस्मयोत्पादकता के कारण अद्भुत रस का द्योतक है :

ऊठयो अभान अकुलात वग वन अदवि जाग्यो गरज भगाय।
इहाँ दए दहन इस मग आनि। मदपान करयो मनभीत मानि॥
मिष्टान्न चारि शत मन मगाइ। सम गयो बहुर सेयानि पाई॥
शत अष्ट महिष मानव छत्तीस। अति जनु सुगन्ध्या आनि दीस॥
अनेक अन्न भोजन अपार। सो करयो कलेऊ सो गुसाई॥
पुनि करे पठ्या बीर रुधिर पान। उतरि मसाद कछु आन आन॥
इहाँ करत असुर ऊठो हुआर। चायान उड़त पंछी अपार॥
(लंका० 292)

राक्षसों और वानरों के युद्ध वर्णन में रौद्र, वीर, भयानक एवं बीभत्स रसों का सफल परिपाक हुआ है तथा युद्धगत पराक्रम का भी सफल निर्वाह किया हुआ है।

पवन रोस चढि अति छवि पावत। धीर सुभट बादर जनु धावत ॥
अमर चमू रीछनि को आवन। स्याम घटा उनई मनु सावन ॥
भटक निवारि निकट दल आए। रोपारोह छोह बन छाए ॥
सघन धार से छूटे असुर सर। रन है मच्यो मनहु लाग्यो फर ॥
कपि उर लागि निकसि सर कैसे। परवत मनहु पनग से कैंग ॥
धर है ढरत रुधिर धनधारा। झरना अरुत धाता रा झारा ॥
अग्निवान तहा निकसत ऐसे। टूटत नक्षत्र गगन मग जैसे ॥
ताडत कपि राक्षस मूर्धनि तर। असनि परत मानहु गिरि ऊपर ॥
छाईनि कदर रुधिर चले घन। पर्वत सिर बरषा ज्यो परन ॥
बहु सुर घाउ सुभट घर बोलत। झरना मनहु पवन झकझोरत ॥
रुधिर प्रवाह सलिल चलिराते। मज्जन वरि वरि रस माते ॥
तरजत कवध तरगनि मिलि तन। जल क्रीडा सी करत प्रितव जन ॥

बीर उदर फटि अन बहावत। मानहुँ ग्राह तत मुक्तावत ॥
अन्नावलि जबुक धरि अचत। येल मीन बक सीसी वैचन ॥

(लका० पृ० 328)

कवि का अलकार विधान भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक बिबग्राही एव सशक्ति है। उपमा उत्प्रेक्षा, अपह्नुत, रूपक, अनुप्रास आदि

बनि बैठ्यो साऊ पर रावन। भामिनि मदोदरि मन भावन।
राजति छत्र बितान मनोहर। पुर जनु घटा घमडत जलधर ॥
कटक मुकुट किरीट कनकमय। मदोदरी कुडल नग हिममय ॥
राम कह्यो देखहु लकेसुर। दामिनी दमक सक्पुर ढबर ॥
मनहिं बिभीषन आवत भोरे। उनयो घन परिहयो बोरे ॥
बोले लक बिलोकि बिभीषन। मघ नही न यह रघुकुल मडन ॥
सजि बितान बहुरग सवारे। उहा रावण घर होत अपारे ॥
घुमरत नही न मृदग सबद घर। गगन पूरि प्रति धुनि प्रबल गन ॥
नाय दमक दामिनि यह नाही। मदोदरि कुडल चमकाही ॥
रतन किरीट चमक एरावन। नही चपला प्रेतायन सावन ॥

(लका० 268, 69)

राम जन्म पर सुर, मुनि, आदि का आनन्द राम तथा ऋतुराज के रूपक द्वारा प्रगट किया गया है।

अवधि शिशिर अवसान जनम आगम जगजानीय ॥
अमर वृंद आनन्द निमिल बन पुहुप निधानीय ॥

कटक मय भर टरीय सीत दाहक नही सज्जइ ॥
सत कमल विकसन्त किति कवि कोकिल किज्जइ ॥
मुनि मधुपमाल गावत मुदित वेद नीति त्रय बात वाहि ॥
जग प्रगटि राम ऋतु राज ज्यौं उछव आमोद महि ॥

(बाल० पृ० 39)

विरह मे राम का विगलित मानव हृदय सीता के अग प्रत्यग को प्रकृति के उपमानो पर आरोपित करने लगता है —

हा हा वैदेही परम हेत। मुहि दुखित देखि किन दरस देत ॥
निसिनाथक दीन हा कमल नैनि। विश्राम जीव कोकिल बैने ॥
रद वज्र बिम्ब रद छद सुरग। कठी कपोत लोचन कुरग ॥
भुज जुगल प्रेम पाभो सुभाइ। कर कमल पत्र कोमल सहाइ ॥
कर पल्लव चपक कली कीन। नय जोति होति उपमा नवीन ॥

(अरण्य० पृ० 191)

निश्चय ही नरहरदास बारहट की पौरुषेय रामायण काव्य वैभव एव सौन्दर्य की अनूठी खान है। राम काव्य परम्परा मे तुलसी के रामचरितमानस के पश्चात् यदि हम इसे स्थान दें तो पूर्ण रूप से न्यायोचित होगा।

पद रामायण

सारणी 'ख' से प्रतीत होता है कि पजाब म रचित हिन्दी राम काव्यो की परम्परा क माका सिंह वैद्यकृत 'रामचरित्र रामायन' के साथ स० 1921 मे अवरुद्ध हो जाती है जबकि पजाबी म रचित राम काव्यो की रचना स० 2018-19 तक होती रही। परन्तु गगाराम कृत 'पद रामायण' की नूतन उपलब्धि के फलस्वरूप पजाब मे प्रणीत हिन्दी राम काव्यो की अन्तिम सीमा स० 1945 को स्पर्श कर लेती है।

गगाराम का नाम किसी भी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक ने वर्णित नही किया। पजाब मे रचित हिंदी साहित्य के विशेषज्ञ श्री चन्द्रकान्त बाली ने भी अपने ग्रन्थ मे इसका उल्लेख नही किया। सन् 1974 मे मैंने अपने लघु शोधप्रबध 'पजाब में रचित हिंदी और पजाबी राम काव्यो का तुलनात्मक अध्ययन' मे यद्यपि बाली जी की नजरो से छूटे हुए कुछ नए काव्यो का ब्योरा दिया तथापि गगाराम कृत 'पद रामायण' को इस शोधप्रबन्ध मे स्थान म प्राप्त हो सका क्योंकि पजाब के प्रमुख पुस्तकालयो की सूचियो मे इसका नाम सम्मिलित नही हुआ था। इस पुस्तक की एक प्रति मुझे दैववशात् जालन्धर नगर के एक पुस्तक विक्रेता के पास से प्राप्त हुई। पुस्तक के टाईटल पृष्ठ पर गगाराम को कपूरथला निवासी बताया गया था। साथ ही यह कहा गया था कि गगाराम ने अपने किसी मित्र के माध्यम

से यह रामायण बम्बई से छपवाई थी।

पुस्तक कब लिखी गई थी। इसकी ओर कवि ने कहीं भी अपनी रचना में इंगित नहीं किया परन्तु पुस्तक के अन्तिम दोहे के पश्चात् 1945 की संख्या से सिद्ध होता है कि यह 1945 में छपी थी। निश्चय ही कवि ने इसकी रचना 1945 से कुछ वर्ष पूर्व की होगी। पुष्ट प्रमाण न होने के कारण हमें इस कृति का प्रकाशन काल सम्वत् 1945 ही मानना पड़ेगा।

कवि का नाम यद्यपि गंगाराम ही है तथापि उन्होंने अपने प्रत्येक पद तथा दोहे में अपने आप को 'राम गंग' की संज्ञा से अभिहित किया है। उदाहरण के लिए देखिए —

1 रघुपति कथा सकल सुखदाई ॥
जपतप योग ज्ञान व्रत संयम करनो कलि कठिनाई ॥
मदन मान मद मिलि मिलि मारो दीन दुखी अति भाई ।
यह हिय जानि नाम गुण करिहा अहमिति मन बिसराई ॥
गुण गण राम काम तरु सेवत दारिद दोष नशाई ॥
राम गंग प्रद चारू चार फल आगम निगम बताई ॥ (पृ० 1, 2)

2 चुक चपलता दोन की, क्षमा करें हरिदास ॥
राम गंग सियराम पद, देहि प्रेम विश्वास ॥1॥
सब वेद को भक्ति हरि रसना शेष बखान ॥
राम गंग सम्वत् रुचिर पद रामायण भान ॥2॥ (पृ० 153)

प्रत्येक काण्ड के अन्त में कवि ने अपना नाम गंगा राम ही लिखा है देखिए—
इति श्री गंगाराम कृत पद रामायणे बाल काण्ड समाप्तम् ॥ (पृ० 26)

गंगाराम ने 'पद रामायण' की कथावस्तु का विभाजन सर्वाधिक प्रचलित परम्परा के अनुसार काण्डों में ही किया है। अतः बालकांड, अयोध्या कांड अरण्य कांड किष्किन्धा कांड, सुंदर कांड, लंका कांड तथा उत्तर कांड इन सात कांडों में सम्पूर्ण राम कथा गुंफित की गई है प्रत्येक कांड की छंद संख्या इस प्रकार है —

नाम कांड	पद संख्या	दोहा संख्या
1 बाल कांड	61=61	1
2 अयोध्या कांड	62-162=101	1
3 अरण्य कांड	163-207=45	1
4 किष्किंधा	208-241=34	1
5 सुन्दर कांड	242-277=36	1
6 लंका कांड	278-330=53	1
7. उत्तर कांड	331-338=8	1

(क) अथ होरी लीला	339-344=6	
(ख) अथ आरती युगुल सरकार की	345=1	1
(ग) अथ विनय श्री दरबार मे	1-16=16	2-2
पूर्ण सख्या	345—16 (विनय)	12

पद रामायण की पृष्ठ सख्या 153 है।

यद्यपि गगाराम से कुछ पहले स० 1917 मे भक्त रत्न हरिदास पदों मे दो रामायणें लिख चुके थे (राम रहस्य—5000 पद) (रामललामगीत –6000 पद) तथापि अद्यावधि अप्रकाशित होने के कारण इन रामायणो का आलोचनात्मक एव तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नही है। गगाराम से पूर्व महाकवि सूरदास ने राम की लीलाओ का पदो मे गायन किया। ये पद राम नवमी तथा दशहरा के उत्सव पर कीर्तन करने के लिए सूर द्वारा रचे गए। प्रभुदयाल मीतल क अनुसार, 'इस प्रकार के पद सर्वप्रथम कीर्तन की पुस्तकों मे सकलित किये गये, जो राम नवमी को 'राम जन्म की बधाई' और दशहरा को करखा के पदो के रूप मे उपलब्ध है। इन्ही पदो को बाद म राम-कथा के क्रम से भी सकलित किया गया जो सूरसागर नवम स्कन्ध मे प्राप्त होते हैं। ये ही पद सूर कृत 'राम पदावली' अथवा 'सूर रामायण' के रूप म भी सकलित मिलते हैं, किन्तु सूरदास ने इन्हें रामचरित का क्रमबद्ध चित्रण करने के लिए नही लिखा था ' (सूरदास के रामचरित चित्रण की पृष्ठभूमि—कल्याण का श्रीरामाक, जनवरी 1972, पृ० 518) स्पष्ट है कि इन पदों को राम कथा का क्रमबद्ध चित्रण नहीं हुआ। फलस्वरूप प्रबन्ध काव्य के अनुरूप कथा क्रम का अभाव लक्षित होता है। यह निम्नलिखित प्रत्येक काण्ड म समाविष्ट पद सख्या मे भी सिद्ध होता है —

1	मगलाचरण	— 1
2	बाल काण्ड	— 2 - 16=15
3	अयोध्या	—17 - 44=28
4	अरण्य	—45 - 57=13
5.	किष्किन्धा	— 58 - 64=7
6	सुन्दर	—65-109=45
7.	लका	110 199=90
		199

सारावली की रामकथा यद्यपि अतीव सक्षिप्त है क्योकि उसे केवल 13 छदो मे ही समाहित कर लिया गया है, तथापि वह अधिक क्रमबद्ध है। इस तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि गगाराम की 'पद रामायण' ही अद्यावधि ज्ञात पद रामायणो मे शीर्ष स्थिति की अधिकारी है जिसमे प्रबन्ध काव्य के

अनुरूप रूप तथा क्रम का निर्वाह सम्भव हुआ है।

महाकवि के अनुरूप गगाराम ने 'पद रामायण' में मानस-सिन्धु की उन सभी भावोर्मियों में आकण्ठ अवगाहन किया है जो मर्मस्पर्शी, रसपेशल, हृदयावर्जक, मनोहरी एव सत्वोद्रेकिनी हैं। दशरथ की प्राणान्तक पीड़ा का कितना मर्मभेदी चित्रण हुआ है जब विश्वामित्र यज्ञ विध्वसक राक्षसों को मारने के लिए राम को साथ ले जाने का प्रस्ताव करते हैं —

दशरथ सुनि सम बदलो काप्यो
मूर्छि परयो जिमि बाण लग्यो भारी ॥
राम विरह नहि प्राण मैं धारो मणितजि जैसे उरग दुखारी ॥

कैकेयी के वर मागने पर दशरथ की व्यथित मनोदशा का वर्णन भी हृदय द्रावक है

दशरथ मौन होय दुख भारी।
दूसर वर सुनि धुनि सिर कापन ले उसास सुधि हारी ॥
लाय निवार परयो धरणि पर सिंहिनि जिमि गजमारी।
छिन छिन सुध बेसुध महि गिरि जनु मणिबिन साप दुखारी।
राम गम नृप विकल पुकारत जिमि करुणा वपुधारी ॥

राम के मुख से वन जाने की बात सुन कर कौशल्या का मातृ हृदय चीत्कार कर उठा है —

आज मैं सब विधि भइ है अभागी।
जावो पूत जात बन त्यागी।
कठिन कुलिश हिय फूटत नाही प्रीय राम विरहागी।
अधम प्राण नहि न जात शरीरहिं रहे काहि अनुरागी ॥···· (99)
तुम बिन तात मात दुख भारी।
सुन्दर श्याम रूप सुत तुम सम केहि कर नयन निहारी।
सुनो सदा नित चरितन काके लालन काहि पुकारी।
काको गोद मोद भर लेऊ अपने भुजन पसारी।
मोरे वदन कौन मोहिं भाषै अब मात महतारी।
राम गम बिन सुत तुम कापर जाय जननि बलिहारी ॥ (98)
राम मातु मन विकल पुकारी।
चले कहा सुत आज त्यागि मोहि सकल लाडप्रिय मातु बिसारी।
मात तात सरित तात तनकछिन रहो गहो सुख तोहि निहारी ॥
हाय सिय राम लक्ष्मण मम प्यारे करो दया लाल मातु दुखारी ॥
राम गम अति दुखित कौशल्या धेनु वच्छ जिमि होत है न्यारी। (116)

बाल लीलाओं का चित्रण भी अत्यन्त हृदयग्राही एव मनोवैज्ञानिक हुआ है :

कौशल्या हरि खडी खिलावत ।
अगन खभ प्रतिबिम्ब दिखावै अगुरि बचाय बुलावत ।
आवो लाल लाल सग खेलो निरखत तोहि सुख पावत ।
वदन निकट निज बाल वदन कर हर्ष हीय हुलरावत ।
वेसर सुष्ठु दृष्टि परि हरि की पकरन हाथ चलावत ।
ऊँच करत मुख मातु मनि सुख हरि हठ करि विमावत ।
खेल खान बहु भाँति भुलावै गिरत गोद अरिलावत ।
मुख दुराय विधु जननि बुझाये हेरत दृग अलसावत ।
राम गग कर ठोक मद वर लालहि मातु सुलावत ॥ 13 ॥

युद्ध वर्णन भी सक्षिप्त परन्तु प्रभावशाली बन पड़ा है ।

शुर्पनखा शिर पीटत रोवत सुनि रिसाय स्वर अधर चबाये ।
वेगि बोलि खल निदचर लीन जिन रण नामु सपूर धराये ।
शूल कृपाण परशु असि आयुध समर सज साज सजाये ।
भयकर रूप घोर रव गरजत प्रेरत काल सकल चलि आये ।
निशचर सेन देखि रघुनन्दन रक्ष हेतु सिप अनुज बुझाये ।
आप खरे सज बाण शरासन जिमि राजमृग सिंह नियाये ।
असुरन मध्य राम मल शोभित जनु शशि घन समूह छवि छाये ।
चौदस सहस पुनि एक बार मल अस्त्र शस्त्र प्रभु ओर चलाये ।
रघुवर जोर धनुष शर छाडे आयुध रिपु न सकल विनशाये ।
पुनि धरि राम विषम नारायन मार मार खलधरणि गिराये ।
दूषण हति खर अधम निपात्यो एक बाण खर त्रिशिर उडाये ।
निमिष मात्र प्रभु असुर सहारे सुमन वर्ष नभ सुर हर्षाये ।
· ··· · ·
रिपु हति समर भमि प्रभु ठाढे त्रिपुर मारि जिमि शम्भु सुहाये ।

यह सुन कर कि लक्ष्मण ने भ्राता राम के लिये युद्ध मे जीवन न्योछावर कर दिया है, सुमित्रा हर्ष म फूली नहीं समाती, उसकी वाणी मे क्षत्राणी की ओजस्विता और कर्त्तव्य निष्ठता तरगायित होती है ।

लपण दशा सुनि लक्ष्मण माता ।
मन प्रमोद सुत श्रवण न करणी नयन नीर तनु पुलकित गाता ।
आज धन्य मैं धन्य तनय मम जिन प्रभु हित निजवपुप नियाता ।
कहियो नाथ मम ओर ते रामहि लपण सोच कछु करहु न ताता ।
रिपुहि जीत बलि सहित सीय सुख पावहि आव सुत तुम कुशलाता ।···
(310)

सक्षेप म हम कह सकते हैं कि गणाराम ने हृदय को उद्वेलित करने वाले किसी भी प्रसग को नही छोडा । अत पद रामायण म इतिवृत्तात्मकता बहुत कम

है, अधिकांश पद मानव भावनाओं एवं संवेदनाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण यथातथ्य रूप में करते हैं।

गंगाराम की तूलिका द्वारा राम का सौन्दर्य अकन मन को अभिभूत कर लेता है।

> अलख अगोचर अज अविनाशी दशरथ भवन प्रकट में आई।
> जलद श्याम तन काम कोट छवि शीश मुकुट मणि जटित लसाई।
> कुंडल कर्ण अरुण दृग सरसिज चारु सुचित बन परम सुहाई।
> ललित ललाट तिलक भल भ्राजत भृकुटि कुटिल धनु मार लजाई।
> गोल कपोल काम जनु दर्पण अधर अरुण रद चमक चुंधाई।
> वदन मयंक शरद सुठि हंसनो कंबु कंठ त्रयरेख लसाई।
> मणिन मुक्त वनमाल रुचिर उर भृगुवर चरण चिन्ह बिलसाई।
> भुजग दंड भुज धनु शर लीन्हे पीत बसन कटि तूण बधाई।
> चरण कमल कुलिशादि सुचिन्हित हर हिय सर जो बसत सदाई।
> अंग अंतकृत अनुपम शोभा लखि छवि कोटि मार मलिनाई।
> राम अंग मोहिं भांति बखानें सो छवि जान कौशिला माई॥ 5॥

गंगाराम भगवान राम को यद्यपि अलख, अगोचर, अज, अविनाशी मानते हैं तथापि उन्होंने अपने इष्ट में सभी मानव सुलभ संवेदनाओं का समावेश किया है शेष पात्र भी सामान्य मानवीय धरातल पर उकेरे गए हैं जिसे कवि की अलौकिक प्रतिभा ने अप्रतिम तरल संवेदना प्रदान की है।

अपनी वाणी को सक्षम तथा प्रभविष्णु बनाने के लिए तथा मूर्तिमत्ता का संचार करने के लिए कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, उल्लेख, विशेषण, विपर्यय, मानवीकरण, अतिशयोक्ति आदि प्रमुख अलंकारों का प्रयोग किया है। पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए कहीं अलंकारों को समाविष्ट नहीं किया गया। शब्दालंकारों में कवि को अनुप्रास विशेषप्रिय प्रतीत होता है। केवल चमत्कार उत्पन्न करने वाले शब्दालंकारों को कवि ने ग्रहण नहीं किया।

1 चले पवन सुत पवन समाना।
उड़त आकाश अर्क जिमि सोहत बहुरि जात जस रघुवर बाना।
तन विशाल लंगूर चलत लस मेरु शिखर जनु दीप सुलाना॥ 242॥

2 रिपुरण जीति फिरे रघुनन्दन शोभा परम सुहाई।
बंधी जटा कछु मुख पर बिथुरी श्रमकण बीच लसाई।
मनहुँ मेघ पर बिजुरि तारगण उडुगण सहित दिखाई।
पुनि जनु शशिहिं बाल अहि पूजत मणि गण चारु चढ़ाई॥ 355॥

3 लखि सौमित्रि दशा दल आपन उठे शरासन बाण बनाई।
मनहु वीर रस धारि शरीरहिं युद्धभूमि मा प्रकटो आई॥ 316॥

4 बनी अवध कछु कहि नेहि जाई।
ध्वज पताक मणि तोरण माला कनक कलश सुठि चौक पुराई।
सींत सुगध दधि मृगमद कुकम बाट घाट गृह वीथि सिचाई॥ 41॥

5 प्रणवो श्री गुरुचरण सुभावन।
रज दृग अजन दोष विभजन नखमणि अज्ञान नशावन॥ 1॥

6 आलि जिन मोहि लिया नर नारी।
मणि काचन कर शिखर किधौं के मानस हस विहारो।
राज रितु सग मदन का विहरत विश्व विजय हित सारो।
ब्रह्म जीव वपु धार किधौं के आन अमर तन धारो॥ 28॥

पद रामायण की भाषा ब्रज है। यह भी आश्चर्य का विषय है कि जिस समय ब्रज तथा अन्य हिन्दी भाषा भाषी प्रदेशा म ब्रज का प्रमुत्व समाप्त हो रहा था, पजाब मे गगारामने प्राजल सतुलित, परिमार्जित, सरस एव प्रसादगुण युक्त ब्रज को अपने काव्य का माध्यम बनाया। कही कही पजाबी एव फारसी के शब्द भी झलकते हैं। परन्तु उनकी सख्या दो चार से अधिक नही। विषय क अनुसार तत्सम शब्दो का कही कही प्राधान्य दृष्टिगत होता है। तत्सम शब्दो न विषय को गरिमा, गाम्भीर्य एव उदात्तता प्रदान की है।

जैसा कि नाम से ही विदित होता है 'पद रामायण' मे प्रयुक्त मुख्य छन्द 'पद' ही हैं। प्रत्येक काड के अंत मे एक या दो दोहे, प्रयुक्त हुए हैं कदाचित् इस परम्परा का निर्वाह करने के लिए कि महाकाव्य क प्रत्येक सर्ग के अत मे छन्द परिवर्तन होना चाहिए। अत सारी रचना म केवल 12 दोहे ही हैं। गगाराम की पद योजनाए तुलसी एव सूर की पद योजनाओ म कही कही झलक पडती प्रतीत होती हैं। परन्तु कथा वस्तु के विवेचन स प्रतीत होता है कि कवि ने तुलसी एव सूर का अनुकरण नही किया प्रेरणा चाहे उसने तुलसी एव सूर के काव्या से प्राप्त की हो। एव एक उदाहरण पर्याप्त होगा। रामचरितमानस मे परशुराम का आगमन धनु-मग के पश्चात् जनक सभा मे होता है परन्तु 'पद रामायण' म परशुराम मिथिला से लौटती हुई बारात को अयोध्या के मार्ग म मिलते हैं। इस प्रकरण म यद्यपि सूर तथा गगाराम म साम्य है परन्तु सूर ने राम की जन्मकुण्डली का कही वर्णन नही किया जबकि गगाराम ने राम की पूर्ण जन्मकुण्डली देकर उसके प्रत्येक ग्रह का फल गुरु वशिष्ठ द्वारा कहलवाया है।

उपरिलिखित विवेचन से स्पष्ट है कि गगाराम की 'पद रामायण' प्रबन्ध काव्य, भाव एव कला पक्ष की दृष्टि म पजाब म रचित रामायणो मे अद्वितीय है। समूर्ची राम काव्य परम्परा म भी इसका विशिष्ट स्थान है जिसके कारण गगाराम को महाकवि की पदवी से विभूषित किया जा सकता है।

सारणी 'क'

(प्रान्तीय भाषाओं में रचित राम-काव्य)

1 तमिल में	कंबन् कृत रामायण	12वीं शती
2 तेलुगु में	द्विपद रामायण रंगनाथ कृत (रंगनाथ रामायण)	13वीं शती
3 ,, ,,	भास्कर रामायण भास्कर कृत	14वीं शती
4. ,, ,,	मोल्ल रामायण मोल्ल नामक कुम्हारिन कुमारी कृत	1600ई०
5 मलयालम में	रामचरितम् (इराम चरितम्) राम कृत	14वीं ,,
6 ,, ,,	कण्णश्श रामायण कण्णश्श पणिक्कर कृत	15वीं ,, (उत्तरार्द्ध)
7 ,, ,,	अध्यात्म रामायण, एजुतच्छन कृत	1575और1650 के बीच
8 कन्नड में	तोरवे रामायण तोरवे निवासी नरहरि कृत	16वीं ई०
9 ,, ,,	मैरावण कालग (मैरावण का युद्ध) "	,,
10 ,, ,,	जैमिनी भारत लक्ष्मी कृत	,,
11 कश्मीरी में	काश्मीरी रामायण अर्थात् रामावतार चरित दिवाकर भट्ट कृत	18वीं शती के अंत में
12 असमिया में	माधव कदली-रामायण	
	1 माधव कदली	
	2 शंकर देव कृत	14वीं शती के अंत में
	3. माधव देव	16वीं शती
13 ,, ,,	लवकुश युद्ध, हरिवर विप्रकृत	14वीं शती
14 बंगाली में	रामायण (श्री राम पांचाली आख्यान काव्य) कृतिवास ओझा कृत	15वीं शती
15 उड़िया में	महाभारत में वर्णित राम कथा सिद्धेश्वर परिडा (सारलादास)	15वीं शती
16 ,, ,,	1 जगमोहनराय 2 दण्डीरामायण 3 बलरामदास रामायण	16वीं के प्रारम्भ में
17 ,, ,,	विलंका रामायण सिद्धेश्वर दास कृत	18वीं ,, ,,
18 अवधी में	रामचरितमानस तुलसी कृत	16वीं ,, ,,

19	ब्रज में	पृथ्वीराज रासो द्वि, समय दशावतार कथा के अन्तर्गत · चन्दरवरदायी कृत	13वी शती
20	,, ,,	सूरसागर सूरदास कृत	15वीं शती
21	,, ,,	रामचन्द्रिका केशवदास कृत	17वी के प्रारम्भ में
22	,, ,,	पौरुषेय रामायण नरहरदास बाहरट कृत	17वी शती
23	मराठी मे	भावार्थ रामायण एकनाथ कृत	16वी शती
24	,, ,,	रामविजय श्रीधर कृत	1703 ई०
25.	गुजराती मे	रामायण गिरिधर दास कृत	16वी शती

(पंजाब मे रचित राम काव्य के लिए सारणी ' ख" देखें)

सारणी 'ख'

पंजाब मे हिन्दी और पंजाबी मे रचित राम-काव्यो की प्रणयन तिथियो को निम्न सारणी मे कालक्रमानुसार प्रदर्शित किया गया है —

हिन्दी मे प्रणीत राम काव्य	प्रणयन काल	पंजाबी मे प्रणीत राम काव्य	प्रणयन काल
चंदबरदायी कृत रामावतार की कथा	संवत् 1248	आदि ग्रंथ मे वर्णित रामकथा विषयक प्रयोग	संवत् 1662
सूरदास कृत सूरसागर मे वर्णित राम कथा	,, 1602	भाई गुरुदास की वारो म वर्णित रामकथा	1662
हृदयराम भल्ला कृत हनुमान नाटक	,, 1680	कवि देवीदास कृत लऊ कुसु दीवार	1767
कपूरचंद त्रिखा कृत रामायण	,, 1703	जसोधा नन्दन कृत लवकुश दी वार	1779
गुरु गोबिन्द सिंह कृत रामावतार	,, 1750	जवाहरसिंह कृत वार श्री रामचन्द्र जी की	1854
रामसिंह कृत सार रामायण	,, 1807	गुरदासिंह कृत बारमाह श्री रामचद्र जी का	1907
गुलाबसिंह कृत अध्यात्म रामायण	,, 1839	तुलसीदास कृत विनयपदे रामायण दे	1907
संतोषसिंह कृत बाल्मीकि रामायण	,, 1891	कवि कालिदास कृत रामायण	1988

सारणी 'क'

(प्रान्तीय भाषाओं में रचित राम-काव्य)

1	तमिल में	कंबन् कृत रामायण	12वीं शती
2	तेलुगु में	द्विपद रामायण रंगनाथ कृत (रंगनाथ रामायण)	13वीं शती
3	,, ,,	भास्कर रामायण भास्कर कृत	14वीं शती
4	,, ,,	मोल्ल रामायण मोल्ल नामक कुम्हारिन कुमारी कृत	1600ई०
5	मलयालम में	रामचरितम् (इराम चरितम्) राम कृत	14वीं ,,
6	,, ,,	कण्णश्श रामायण कण्णश्श पणिक्कर कृत	15वीं ,, (उत्तरार्द्ध)
7	,, ,,	अध्यात्म रामायण, एजुतच्छन कृत	1575और1650 के बीच
8	कन्नड़ में	तोखे रामायण तोखे निवासी नरहरि कृत	16वीं ई०
9	,, ,,	मैरावण कालग (म रावण का युद्ध) ''	,,
10	,, ,,	जैमिनी भारत लक्ष्मी कृत	,,
11	कश्मीरी में	काश्मीरी रामायण अर्थात् रामावतार चरित दिवाकर भट्ट कृत	18वीं शती के अंत में
12	असमिया में	माधव कदली-रामायण 1 माधव कदली 2 शंकर देव कृत 3 माधव देव	 14वीं शती के अंत में 16वीं शती
13	,, ,,	लवकुश युद्ध, हरिवर विप्रकृत	14वीं शती
14	बंगाली में	रामायण (श्री राम पाचाली आख्यान काव्य) कृत्तिवास ओझा कृत	15वीं शती
15	उड़िया में	महाभारत में वर्णित राम कथा सिद्धेश्वर परिदा (सारलदास)	15वीं शती
16	,, ,,	1 जगमोहनराय 2 दण्डीरामायण 3 बलरामदास रामायण	16वीं के प्रारम्भ में
17	,, ,,	विलंका रामायण सिद्धेश्वर दास कृत	18वीं ,, ,,
18	अवधी में	रामचरितमानस तुलसी कृत	16वीं ,, ,,

19	ब्रज में	पृथ्वीराज रासो द्वि. समय दशावतार कथा के अन्तर्गत · चन्दरवरदायी कृत	13वीं शती
20	,, ,,	सूरसागर सूरदास कृत	15वीं शती
21.	,, ,,	रामचन्द्रिका केशवदास कृत	17वीं के प्रारम्भ में
22	,, ,,	पौरुषेय रामायण नरहरदास बाहरठ कृत	17वीं शती
23	मराठी में	भावार्थ रामायण एकनाथ कृत	16वीं शती
24	,, ,,	रामविजय श्रीधर कृत	1703 ई०
25	गुजराती में	रामायण गिरिधर दास कृत	16वीं शती

(पंजाब में रचित राम काव्य के लिए सारणी 'ख" देखें)

सारणी 'ख'

पंजाब में हिन्दी और पंजाबी में रचित राम-काव्यों की प्रणयन तिथियों को निम्न सारणी में कालक्रमानुसार प्रदर्शित किया गया है —

हिन्दी में प्रणीत राम काव्य	प्रणयन काल	पंजाबी में प्रणीत राम काव्य	प्रणयन काल
चंदबरदायी कृत रामावतार की कथा	संवत् 1248	आदि ग्रंथ में वर्णित रामकथा विषयक प्रयोग	संवत् 1662
सूरदास कृत सूरसागर में वर्णित राम कथा	,, 1602	भाई गुरुदास की वारों में वर्णित रामकथा	1662
हृदयराम भल्ला कृत हनुमान नाटक	,, 1680	कवि देवीदास कृत लऊ कुसु दीवार	1767
कपूरचंद त्रिखा कृत रामायण	,, 1703	जशोधा नन्दन कृत लवकुश दी वार	1779
गुरु गोविन्द सिंह कृत रामावतार	,, 1750	जवाहरसिंह कृत वार श्री रामचन्द्र जी की	1854
रामसिंह कृत सार रामायण	,, 1807	गुरुदाससिंह कृत बारमाह श्री रामचंद्र जी का	1907
गुलाबसिंह कृत अध्यात्म रामायण	,, 1839	तुलसीदास कृत विनयपदे रामायण दे	1907
संतोषसिंह कृत बाल्मीकि रामायण	,, 1891	कवि कालिदास कृत रामायण	1988

हरनाम राय कृत बाल काड „ 1894

सूरदास सूरजबसी „ 1897

कृष्णलाल कृत राम चरित्र „ 1900

निश्चल कृत
रामायण तथा रामचन्द्रोदय „ 1902

चुनालाल "बारामासा
रामचद्र का „ 1904

वीरसिंह कृत सुधासिन्धु
रामायण „ 1909

हरिसिंह कृत
"आतम रामायण" „ 1910

रतन हरिकृत
रामसलाम गीत „ 1917

कीरतसिंह कृत 'अनूप
रामायण,' 'कीरत „ 1917
रामायण,' 'सतसैया रामायण'

बसावासिंह वैद कृत 1922
"रामचरित्र रामायन"

अमरसिंह अहलूवालिया
कृत अमर रामायण 1941

राम लुभाया दिलशाद कृत
पजाबी रामायण 2003

चक्रधर 'बेजर' कृत सुदर
रामायण 2004

बृजलाल शास्त्री कृत
राम कथा 2009

गुरमुख सिंह प्रेमी कृत
तुलसी रमैणी पजाबी 1983

हरिपाल सिंह वेदी कृत
'तुलसी रामायण 2018
दा पजाबी कविता विच
अनुवाद" 20219

चन्न सिंह भान सिंह
लउ कुश 2008

अर्थात् सीता बनवास
आत्मा राम कृत
सीता स्वयवर 2008

दौलत राम कृत सीता
बनवास अर्थात् लऊकुश 1982
दा युद्ध

रघुवीर सिंह कृत लव कुश
(सीत बनवास)

ईश्वर सिंह कृत राम बनवास

पंडित सदाराम कृत रानी सरलोचना

3

भारतीय परम्परा के परिप्रेक्ष्य में गुरु नानक के काव्य में नाम-जप

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु (623 ई०) के पश्चात् खलीफाओं के राज्य-काल मे अरब भारत के पश्चिमी भूभागो पर सतत आक्रमण करने मे जुट पडे। फल स्वरूप सिन्ध और मुलतान पर तो उनका शासन (711 ई०तथा पुन 724 ई०मे दृढता से स्थापित हो गया परन्तु अफगानिस्तान और पजाब के हिन्दू राज्य उन के चगुल स चीनी तथा काश्मीरी शासको के सक्रिय सहयोग के प्रभाव से बचे रहे। इस सबध में प्रसिद्ध इतिहास लेखक जयचन्द्र विद्यालकार लिखते है, "यो कहना चाहिए की डेढ शताब्दी (644-786 ई०) तक भारत के पश्चिमी दरवाजो पर लगातार टक्करें मार कर अरब लोग केवल एक प्रान्त सिन्ध मे ही घुस सके और अफगानिस्तान म घुसन या सिन्ध म आगे बढने की उनकी सब चेष्टाए बेकार हुई, (भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पाचवा सस्करण, 1956-57, पृ० 283)।

नौंवी शती के उत्तरार्ध मे अरब साम्राज्य खण्ड खण्ड हो गया और उसके स्वसावदोपो स कई छोटे-छोटे राज्य प्रादुर्भूत हुए जो स्थानीय तुर्की, सरदारो और अमीरो से शासित थे। इनमे मे एक प्रदेश बुखारा और खुरासान ऐसे ही तुर्की अमीरो के आधिपत्य मे थे। इस राज्य के सरदारो—अलप-तगीन (लगभग 960 ई०) सुबक्-तगीन (977 ई०) और महमूद गजनी (997 ई०)—ने क्रमश अपने अनवरत आक्रमणो स अफगानिस्तान के ब्राह्मण-शाहि-राज्य को जर्जर कर दिया। 1009 ई० मे हुए कुछ के युद्ध मे आनन्दपाल को तथा 1014 ई० मे तौसी नदी के तट पर हुए अन्तिम निर्णायक समर मे त्रिलोचनपाल को पराजित कर लड-खडाते शाहि-राज्य को धराशायी करते हुए महमूद ने काबुल,कान्धार तथा पजाब को अपने अधीन कर लिया। स्पष्ट है कि गुरुनानक के आविर्भाव तथा (1469 ई०) के समय तक पजाब मे विधर्मी शासन को स्थापित हुए 455 वर्ष हो चुके थे।

त्मिक साधना और उनका जपजी' में इस मन्त्र का विश्लेषण इस प्रकार किया है—

बीज-मन्त्र—एक ओमकार

नाम-मन्त्र—सत नाम

गुरु मन्त्र—वाहि गुरु (कल्याण का भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना अंक, जनवरी 1965, पृ० 147) डा० जयराम मिश्र अपनी कृति 'श्री गुरु ग्रंथ दर्शन' में इस बीजमन्त्र का महत्व इन शब्दों में वर्णित करते हुए कहते हैं—'वास्तव में बीजमन्त्र अथवा मूलमन्त्र का अत्यधिक मूल्य है। यदि हम गुरु ग्रन्थ साहिब को इसी बीजमन्त्र का भाष्य कहें, तो कुछ अनुपयुक्त न होगा (प्रथम संस्करण 1960, पृ० 61) गुरु नानक की परम्परा में ही आगे चल कर गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि ओंकार ही विविधरूप धारण करके फैला हुआ है। यही एक से अनेक होकर दिखाई पड़ रहा है। सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण भी यही है—

जल थल मही भल पूरिआ सुआमी सिरजन हारु।
अनिक भाति होइ पसरिआ नानक एककारु॥

गुरु ग्रंथ साहिब राग गउड़ी, थिति, महला 5, पृ० 296।

गुरु नानक से पहले दक्षिण में आलवार भक्त, आसाम में श्री शंकरदेव, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर तथा संत नामदेव, राजस्थान तथा गुजरात में पीपा, धन्ना, सधना सेना आदि भक्तगण, उत्तरप्रदेश में रामानन्द, कबीर, धर्मदास, बंगाल में जयदेव आदि अपने अपने प्रान्तों में नामजप की सुधा स्यन्दिनी, मनोमुग्धकारी तथा जीवन दायिनी शीतलधारा प्रवाहित कर चुके थे। केवल पंजाब ही ऐसा अभागा भूभाग था, जो इस शान्ति प्रदायक सुधोपम रस के अभाव में तपते मरुस्थल के समान बना हुआ तृषार्त जनमानस को झुलसा रहा था। पंजाब के निवासी किंकर्तव्यविमूढ़ तथा दिग्भ्रान्त हुए किसी महनीय विभूति की चिरकाल से राह निहार रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में श्री गुरु नानक जी ने अवतरित होकर वाणी रूपी अमृत वर्षा से इस भूभाग को सरस बनाया।

नाम जप

व्युत्पत्ति और अर्थ—वाचस्पत्यम् में नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—नामन् (नपुं०) म्नायते अभ्यस्यते नम्यते ऽभिधीयते ऽर्थो ऽनेन वा म्ना-न-नम-वा। अपने लेख 'भगवन्नाम-महत्त्व और अधिकार' में स्वामी श्रीकृष्ण-बोधाश्रम नाम की व्युत्पत्ति और अर्थ बताते हुए लिखते हैं, 'नाम शब्द' मन अभ्यासे' धातु से म्नायतेऽभ्यस्यते भूयो भूय उच्चार्यतेऽर्थ ज्ञानाय कार्यावबोधनाय च यत्तत नाम अर्थात् जो पुनः अर्थ-ज्ञान एवं कार्यावबोधन के लिए आम्रेडित किया जाय वह नाम है। म्ना धातु के स्थान पर 'ना' आदेश करने अथवा आदि अक्षर 'नकार' का लोप करने और 'मनिन्' प्रत्यय के सम्बन्ध से नाम शब्द की

व्युत्पत्ति है (कल्याण का 'भगवन्नाम और प्रार्थना' अक जनवरी 1961, पृ० स० 37) श्री हरिबाबा जी अपने लेख भगवन्नाम की अनन्त माधुरी और अनन्त शक्ति मे बडे सुन्दर और रोचक ढग से नाम की व्युत्पत्ति और अर्थ वर्णित करते हुए लिखते हैं—"जिस पदार्थ मे आ समन्तात् मा-माधुर्यश्री' हो, उसे 'आम' कह सकते हैं और नास्ति आम यस्मात्—जिसमे बढ कर त्रिभुवन मे कोई भी मधुर वस्तु न हो वही हुआ मधुरामधुर नाम।' आगे चलकर वे एक अन्य चमत्कारपूर्ण ढग से नाम शब्द का व्युत्पादन करते हुए कहते हैं,—"जिससे अमा-अलक्ष्मी अथवा अमा-अन्धकार नही रहता, परम धन, परम लाभ एव आलोक मिलता है, वही तो दिव्य नाम है। न अमा-अलक्ष्मी अन्धाकारो वा यस्मात्। नाम ही ससार चक्र की गति को काटता है। 'आम' गति को भी कहते हैं जिसमे आम 'न रहे वह हुआ नाम।' आम रोगवाचक भी है। 'ससार रोग हरमौषधम द्वितीयम।' भयकर भवरोग ही मिट गया तो लौकिक रोगों की तो बात ही क्या। फिर भी आपको विश्वास न हो तो लौकिक रोगो पर भी सतो का अनुभव सुन लीजिए—सभी रसायन हम करी नही नाम सम कोय। रचक घट मे सचरै, सब तन कचन होय॥ सब रोगो की जड तो अहकार पिशाच ही है—'आम अहकार को भी कहते हैं।' 'आ समन्तात् मातीति आम' जो जीवो को चारो ओर से माप लेता है, 'न आमो येन' अथवा 'नामयतीति' जो जापक-जन को नम्र बना देता है (कल्याण का भग० प्रा० अ० पृ० स० 69, 70)

जप का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—'जप जल्प' व्यक्तायां वाचि। 'जल्पन बार-बार उच्चारणम्" बारम्बार उच्चारण का अर्थ है 'जप'। 'भगवान्' को प्रत्यक्ष करना भी जप है। इस साधना मे ध्याता ध्येयाकार हो जाता है—'तज्जपस्त-दर्थभावनम्।' अग्निपुराण मे 'जप' शब्द का अर्थ इस प्रकार बताया है— जकारो जन्मविच्छेद पकार पापनाशक। तस्माज्जप इति प्रोक्तो जन्मपाप विनाशक॥ (अग्निपुराण)

अर्थात् 'ज' शब्द से जन्म का विच्छेद और 'प' से पाप का नाश। जो जन्म-मरण और पाप का नाश करने वाला है, उसको जप कहते हैं। जप दो प्रकार का होता है—वाचिक तथा मानसिक। वाचिक जप मे ही प्रकारान्तर से उपांशु जप भी आ जाता है। इस प्रकार जप के तीन भेद होते है—(1) वाचिक (2) उपांशु (3) मानसिक। वाचिक जप की व्याख्या इस प्रकार की गई है —

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिक॥

अर्थात् वाचिक जाप उसे कहते हैं, जिसमे स्पष्टत ऊचे-नीचे स्वर से मत्रो का उच्चारण किया जाए। उपांशु जप का लक्षण मनुस्मृति मे यह बताया गया है—'जब मन्त्र का उच्चारण इस प्रकार किया जाए कि होठ धीरे-धीरे हिलते रहें और

निकटवर्ती व्यक्ति भी उसे सुन न सके, जाप करने वाला स्वय ही सुनता हो तो वह उपाशु जप कहा जाता है—शनैरुच्चारयन् मन्त्रंकिंचिदोष्ठौ प्रचालयेत्। किंचिच्छ्रवणयोग्य स्यात् स उपाशुर्जय स्मृत ॥ मनु जी ने यह लक्षण मानसिक जप का बताया है—'जब मन्त्र के पद और अक्षरो का शब्दार्थ सहित अन्तर्मन के द्वारा बिना होठ और जिह्वा हिलाए विचार किया जाए, उसे मानसिक जप कहते है—धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम। शब्दार्थ चिन्तनभ्यां तु तदुक्त मानस स्मृतम् ॥ (मनुस्मृति 2) मनु महाराज ने इन तीनों की आनुपातिक श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहा है— दर्शपौर्णमासरूप कर्मयज्ञो की अपेक्षा से वाचिक जप यज्ञ दस गुना श्रेष्ठ है, उपाशु जप वाचिक जप से सौ गुना श्रेष्ठ है और मानसिक जप उपाशु जप से सहस्र गुना श्रेष्ठ है—कर्मयज्ञ (दर्शपौर्णमास) ये चार पाकयज्ञ हैं—वैश्वदेव, बलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथि पूजन—ये जप यज्ञ के 16वें अश के समान भी नही। विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभि र्गुण उपाशु स्याच्छतगुण साहस्रो मानस स्मृत ये पाक यज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञ समन्विता । सर्वे ते जपयज्ञस्य कला नार्हन्ति पोडशीम् ॥ (मनुस्मृति 2/85-6) अग्निपुराण मे भी इनकी पारस्परिक श्रेष्ठता के विषय मे मनु महाराज के भावो से साम्य रखते हुए विचार व्यक्त किये हैं —'ऊचे स्वर से जो जप होता है, उससे दस गुना विशिष्ट उपाशु जप होता है। जिह्वा जप शतगुना और मानस जप सहस्र गुना विशिष्ट कहा गया है—उच्चैर्जपाद्विशिष्ट स्यादुपाशु दशभिर्गुण जिह्वाजपे शतगुण सहस्रोमानस स्मृत (293-28) इस प्रकार अग्निपुराण मे जप चार प्रकार के माने हैं—(1)ऊची ध्वनि से जप, (2) उपाशु जप, (3) जिह्वा जप (4) मानस जप। अपने जप-योग नामक लेख मे श्री बाल स्वामी ने 14 प्रकार के जपो का वर्णन किया है। (1) नित्य जप, (2) नैमित्तिक जप, (3) काम्य जप, (4) निषिद्ध जप, (5) प्रायश्चित जप, (6) अचल जप, (7) चल जप, (8) वाचिक जप, (9) उपाशु जप, (10) भ्रमर जप, (11) मानस जप, (12) अखण्ड जप, (13) अजपा जप (14) प्रदक्षिणा जप। (कल्याण का श्रीयोगाक अगस्त, 1935, पृ० 3‹8-329)। पूर्वोक्त नाम और जप शब्दो के सम्यक् विश्लेषण से सिद्ध हुआ कि अपने आराध्य के नाम तथा अर्थ की भावना करते हुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे पुन पुनः उच्चारण और मनन करना ही नाम-जप है। यह नाम-जप चार वाणियो से होता है—(1) परावाणी, (नाभि से) मानसिक जप (2) पश्यन्ती वाणी एव उपाशु (हृदय से) (3) मध्यमावाणी (कण्ठ से) (4) वैखरी वाणी-जिह्वा, ओष्ठ और दन्त्य के सामूहिक सयोग से वाचिक जप।

नाम-जप परम्परा

वेदों का नाम जप वैदिक वाङ्मय ही हमारे धर्म का उत्स है। परवर्ती और आधुनिक काल मे जितने भी आस्तिक मतमतान्तर सम्प्रदाय आदि विकसित हुए है या हुए हैं, सबने वेदो को ही अपना उपजीव्य बनाया। कुछ ने प्रत्यक्ष रूप से वेदो की निन्दा करते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से इनमे वर्णित सिद्धान्तो को अपनाया। नाम जप के बीज भी हमे सर्वप्रथम वेदो मे दृष्टिगोचर होते है। वेद ईश्वर का नि श्वसन माना जाता है। अत वेद मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे उसकी ही चर्चा है। उसकी अनेकरूपता और सर्वव्यापकता प्रत्येक पद पर इगित की गई है। पुरुष सूक्त मे स्पष्ट ही कहा गया है, यह सब पुरुष ही है—पुरुष एवेद सर्वम् (ऋग्वेद 10/90/2, अथर्ववेद 19/6/4) वेदो मे ही यह तथ्य सर्वप्रथम प्रकट किया गया है कि ईश्वर के अनेको नाम है तथा उसके भिन्न-भिन्न नाम उस एक की सत्ता का ही आभास देते हैं। ऋग्वेद मे कहा है—'उसे इन्द्र मित्र वरुण अग्नि कहते हैं, वही आकाश मे सूर्य है। वही अग्नि यम और मातरिश्वा है। वह सत्य पदार्थ एक है। मेधावी जन उस एक ब्रह्म को अनेक नामो मे पुकारते हैं—इन्द्र मित्र वरुण मग्निमाहुरथो। दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्।एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातारिश्वानमाहु (ऋग्वेद म० 1/अ० 22/सू० 164-46) अत वेद मे आए हुए विष्णु रुद्र इन्द्र वरुण आदित्य हिरण्यगर्भ अग्नि वायु उषा इला आदि सब भगवन्नाम ही हैं।

नाम दो प्रकार के होते है—(1) वर्णात्मक (2) ध्वन्यात्मक। जो नाम वर्णमाला के अक्षरो को मिलाकर बनते है, उन्हे वर्णात्मक कहते हैं जैसे राम कृष्ण शिव दुर्गा आदि। ध्वन्यात्मक नाम वे हैं जिनका अनुभव योगियो को होता है। जब योगियो के प्राण सुषुम्णा मे प्रवेश करके मूलाधार के ऊपर उठते हैं तब उनको अन्य अनुभूतियो के साथ दिव्य नाद की भी अनुभूति होती है। प्रत्येक चक्र मे नाद का एक विशेष रूप होता है। सहस्रार मे पहुचकर नाद के सूक्ष्मतम रूप का अनुभव होता है, जिसको 'प्रणव' कहा गया है। यही वह स्थल है, जहा तक सम्प्रज्ञात की समाधि की 'अस्मिता' भूमिका रहती है। अस्मिता के होने से ही योगी ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। जिस भूमिका मे ईश्वर का साक्षात्कार होता है, उसके सम्बद्ध होने के कारण प्रणव 'ईश्वर का वाचक' माना जाता है। अत. स्पष्ट है कि प्रणव अर्थात् ओकार ही वास्तव मे वेद वर्णित भगवन्नाम है। नाद के सूक्ष्म रूप की ओर ऋग्वेद मे इस प्रकार सकेत मिलता है—"वाक् के चार पद स्थान या स्वरूप हैं। उनको जो मनीषी ब्रह्मवेत्ता हैं, वे ही जानते हैं। जो सबसे स्थूल चौथा रूप है, उसको मनुष्यादि प्राणी बोलते हैं। शेष तीन रूप गुफा मे छिपे हुए हैं, उनका परिचय साधारणत. नही मिलता—चत्वारि वाक्

परिमिता पदानि तानि विदु ब्राह्मणा ये मनीषिण । गुहात्रीणि निहिता नेंङ्ग्यन्ति तुरीयवाचो मनुष्या वदन्ति, (ऋग्वेद स० 1, अ० 22, सू० 164-65)

वेद मे यह भी कहा गया है कि जहा तक ब्रह्म है, वहां तक वाक् है। वाक्य और वाचक एक दूसरे के अभिन्न हैं। अथवा नाम और नामी एक है—यावद ब्रह्म विष्टित ताव तो वाक् (ऋग्वेद स० 10, अ० 10, सूक्त 114-8) इस मन्त्रार्थ का यह भी अर्थ हो सकता है, जहा वेद है वहा वाक् है। अर्थात् वाक् सारे वेद मे व्याप्त है। सर्वत्र वेद मे वह परम् वाक् है, वह प्रणव, वह भगवन्नाम व्याप्त है।

स्वर्गीय श्री पाद दामोदर सातवलेकर अपने लेख 'वैदिक भक्ति का स्वरूप' मे बताते हैं कि वेदो मे स्तुति, प्रार्थना और उपासना का समन्वित रूप है। 'वेद त्रयी (ऋक् यजु साम) मे ज्ञान, कर्म और उपासना—इन तीनो भागो का निर्देश है। इन्ही को भक्तिभाव के शब्दो मे हम स्तुति, प्रार्थना और उपासना भी कह सकते है। ज्ञान हमे लक्ष्य का बोध कराता है, कर्म लक्ष्य तक हमे पहुचाता है, और उपासना के द्वारा हम उस लक्ष्य के पास बैठने मे समर्थ होते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद के द्वारा हमे ज्ञान, कर्म, उपासना या स्तुति प्रार्थना और उपासना इन तीनो का सर्वांगपूर्ण ज्ञान वैदिक ऋषियो ने दिया है। (कल्याण का भगवन्नाम—महिमा और प्रार्थना अक, जनवरी, '65, पृ० स० 87)

आचार्य शकर, श्रीधर स्वामी, श्री लक्ष्मी धर, श्री पाद सनातन गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी तथा बहुत से अन्य विद्वानो ने ऋग्वेद के इस आशय वाले मत्र को नाम महिमा का मूल सूत्र माना है।—परम पुरातन पुरुष भगवान है। वेद उनकी वाणी हैं। जो जितना जानता है, उसकी महिमा-कीर्तन करके जन्म सफल करे। हे विष्णु ! तुम्हारे चिन्मय प्रकाश नाम की महिमा अपार है। पूर्ण रूप मे कहना असम्भव तथा जो कुछ अक्षर उच्चारित होते हैं, उसी से मानो हम सुमति, भक्ति प्राप्त करते हैं—तमू स्तोतार पूर्व्यंयथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन । आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमति भजामहे। (ऋग्वेद स० 1 अ० 21, म० 156-3)।

वेदो मे नाम द्वारा नाम का आराधन इन निम्नलिखित मत्रो मे स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है,'अभी पौह नही फूटी, अभी सूर्य नही उभरा।'(भक्त)नाम द्वारा नाम का बार बार आराधन कर रहा है······ज्यो ही (वह) मूल (कारण) प्रथमत बड़ा (त्यो ही) वह उस विस्तार पर जा पहुचा, जिससे और कोई बड़ा विस्तार न (था, और न) है (हो)—नाम नामा जो हवीति, पुरा सूर्यात् पुरो (रा उ) षसः। यद् अज प्रथम सबभूव, सह तत् स्वराज्यम् इमाय, यस्मान् नाऽन्यत्। परम अस्ति भूतम् ॥ (अथर्ववेद 10/7/31) प्रभु के अनेक नाम उस अनामी तक हमे पहुचा देते हैं। जो अगम्य है, वह इन नामो द्वारा गम्य बन जाता है। इस

रहस्य का उद्घाटन इस आशय वाली निम्नलिखित ऋचा करती है, विविध रूपा वाणियां विविध प्रकार के शब्दो द्वारा उच्चरित होकर उसके जो अनेक नाम लेती हैं, उन नामो के कीर्तन द्वारा मानव विनयशील बनकर अयज्ञिय पाशो से मुक्ति प्राप्त करता है—नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ऋग्वेद म० 3/अ० 3 / सू० 37/31

वेदो के संहिता भाग मन्त्ररूप ही है। मन्त्रो का स्वाध्याय और जप किया जाता है। स्वाध्याय तथा जप कीर्तन के ही अंग हैं क्योंकि इनसबम वागिन्द्रिय का व्यापार समानरूप से होता है। कीर्तन दो प्रकार के हैं—सकृत कीर्तन और आवृत्त कीर्तन। स्वाध्याय सकृत कीर्तन के अन्तर्गत है और जप आवृत्त कीर्तन के। वेदों के मन्त्रभाग मे दोनो प्रकार के कीर्तन मिलते हैं अर्थात् स्वाध्याय और जप क्योंकि मन्त्रभाग तो कीर्तनीय मन्त्र रूप ही है। देखिए—'हम देवताओ मे किस एक के, किस नाम वाले मनोहर देवता के नाम का जप या कीर्तन करें—कस्य नून कतमस्यामृताना मनामहे चारु देवस्य नाम (ऋ० म०1/अ० 5/सू० 24-1) जो देवताओ मे प्रथम हैं, उन मनोहर देवता अग्नि सर्वव्यापि परमात्मा के नाम का बार-बार कीतन करते हैं—अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृताना मनाहे चारु देवस्य नाम (ऋ० म० 1/अ० 5/सू० 24-2), मैं सदा आप परमात्मा के यश को सूचित करने वाले नाम का कीर्तन करता हूं—सदा त नाम स्वयशोविवक्मि (ऋ० म० अ० 3/। सूक्त 22-5, हम मरण धर्मा मनुष्य आप अमरदेवता परमात्मा के नाम का बार बार कीर्तन करते हैं—मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे (ऋ० म० 8/अ० 1/सूक्त-11-5)

शुक्ल यजुर्वेद के कुछ स्थल भी इस सम्बन्ध म द्रष्टव्य हैं—'हे मनुष्यो ! तुम लोग इन (सोमरूप परमेश्वर) के लिए गान (स्तवन या कीर्तन) करो—उपास्मै गायता नर (33/62), अविनाशी परमेश्वर के पुत्र जो देवगण यहा हो वे हमारी कीर्तनमयी वाणी को सुनें और हम सुख देने वाले हो—उप न सुनवोगिर शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु न (33/77), हे कर्म करने वाले जीव तू उस रक्षक का नामस्मरण (नाम कीर्तन) कर—ॐ क्रतो स्मर (40/15)

मध्ययुग तथा आधुनिक समाज मे प्रचलित सामूहिक कीर्तन और नाम जप की परम्परा के बीज भी वेदो मे विद्यमान हैं—सहस्रो मनुष्य एक स्थान पर मिलकर परमात्मा की प्रार्थना साथ-साथ करें। बीसियां लोग एकत्र होकर परम प्रभु की प्रार्थना साथ-साथ करें। सैकडो की संख्या मे प्रभु की शरण होकर प्रार्थना सम्पन्न करें। लौकिक-अलौकिक सुखो के लिए जो सामूहिक रूप से प्रार्थना करते हैं, उनकी कामनाओ की पूर्ति के लिए परब्रह्म सदैव उद्यत रहते हैं। स्वराज्य चाहने वालों के लिए सामूहिक प्रार्थना नितान्त आवश्यक है—सहस्र साकमर्चत परिष्टोमत विंशति। शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

कौषीतकि ऋषि का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है जिन्होंने सूर्य को लक्ष्य करके ओंकार का भलीभांति गान या जाप करके पुत्र प्राप्त किया था। इस कथा के पश्चात् आश्वासन दिलाया गया है कि अब कोई अन्य साधक इसी प्रकार ओम् का जाप करेगा, उसे भी पुत्रों की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार प्राण हृदय आदि को लक्ष्य करके ओङ्म् का जाप किया जा सकता है (1/5/1)।

गोपथ ब्राह्मण में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि ओ३म् का सहस्र बार जाप करने का महान् फल है—'जो इस एकाक्षर अविनाशी ओ३म नाम की ऋचा का सहस्र बार कुशासन पर बैठ कर, पूर्व की ओर मुख किए, वाक संयम सहित तथा तीन रात्रि तक उपवास करता हुआ जाप करता है उसके समस्त अर्थ और काम सिद्ध होते हैं।—सत् एतत् अक्षर ब्राह्मणो य काम इच्छेत् त्रिरात्रो पोषित प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिषि उपविश्य सहस्रकृत्वा आवर्तयेतत सिद्ध्यन्ति अस्य अर्था सर्वकर्माणि च (1-22) इस के आगे कहा गया है कि देवता देव यजन के उत्तरार्ध में असुरों द्वारा घेर लिए गए। तब देवों ने यज्ञ वेदी से ओंकार के द्वारा ही उन असुरों को पराभूत किया। क्योंकि असुर ओंकार के द्वारा ही परभूत किए गए अतः सर्वप्रथम ओंकार का ही उच्चारण करना चाहिए—यो देवा देवयजनस्य उत्तरार्धे असुरै ययनाआगन तान् ओंकारेण अग्नीध्रीयात् देवा असुरान पराभावयन् तद् यत् पराभाव यत तस्यात् ओंकार पूर्व उच्यते—(1-23)।

वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिपादित प्रणव जाप के कुछ ही संकेत उपलब्ध होते हैं, परन्तु उपनिषदों में प्रणव के महत्व तथा जाप के अनेकों उदाहरण मिलते हैं जिनमें से कुछ यहां दिये जा रहे हैं।

माण्डूक्योपनिषद् में तो केवल ओंकार की ही महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। कहा है—'ओम्' यह अक्षर (अविनाशी परमात्मा) है। यह सम्पूर्ण जगत् उसी का विस्तार है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब ओंकार है जो त्रिकालातीत वस्तु (परब्रह्म) है वह भी ओंकार ही है—ओमित्येतदक्षरमिद सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूत भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव (1-1) प्रश्नोपनिषद् के पांचवें प्रश्नोत्तर में सत्य काम ऋषि ने भगवान् के नाम ओंकार के महत्व को जानने के लिए प्रश्न किया जिसका उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद कहते हैं सत्य काम ! यह जो ओम् है, यह अपने लक्ष्य परब्रह्म परमेश्वर से भिन्न नहीं, अतः यही परब्रह्म है और यही उन हर ब्रह्म में प्रकट हुआ उनका विश्वरूप अमरब्रह्म भी है। इस कारण इस ओंकार का ही आश्रय लेकर इसका जप स्मरण चिन्तन करते हुए विद्वान उसके द्वारा अपने इष्ट को पा लेता है—तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम पर चापर च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनै वायतनेनैकतरमन्वेति ॥ 5-2 ॥ केवल ओंकार का ही आश्रय लेने से परब्रह्म की

प्राप्ति हो जाती है। साधक ऋग्वेद द्वारा इस लोक को, यजुर्वेद द्वारा अन्तरिक्ष को और सामवेद द्वारा उस लोक को प्राप्त होता है, जिसे विज्ञजन जानते है तथा उस ओंकार रूप आलम्बन के द्वारा ही विद्वान् उस लोक को प्राप्त होता है जो शान्त अजर, अमर, अभय, एव श्रेष्ठ है—

ऋग्भिरेत यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते ।

तमोकारेणैवायतनेन्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभय पर चेति (5-7) ।

कठोपनिषद् मे यमराज ने भगवान् के नाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है— 'समस्त वेद नाना प्रकार और नाना छन्दो से जिसका प्रतिपादन करते है, सम्पूर्ण तप आदि साधनो को जो एकमात्र परम् और चरम लक्ष्य है तथा जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान किया करते हैं, उस पुरुषोत्तम भगवान् का परमतत्व मैं तुम्हें सक्षेप मे बतलाता हू । वह है 'ओम्' यह एक अक्षर—सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपासि सर्वाणि च यद वदति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तत्ते पद सग्रहेण ब्रवीम्योमित्येत् (1/2/15) । यह अविनाशी प्रणव ओंकार ही तो ब्रह्म का निर्विशेष स्वरूप है । इस अक्षर को जान कर साधक जो चाहता है, प्राप्त कर लेता है । यह ओंकार ही परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब प्रकार के आलम्बनो मे से सबसे श्रेष्ठ है । इस आलम्बन को जानकर साधक ब्रह्म लोक को प्राप्त कर लेता है ।

एतद्ध्येवाक्षर ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षर परम् ।
एतद्ध्येवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥
एतदालम्बन श्रेष्ठमेतदालम्बन परम ।
एतदालम्बन ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ (1-2-16-17)

ओम् के उच्चारण द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् मे भी इस प्रकार मिलता है — 'ओम् यह शब्द ब्रह्म है, क्योंकि यह सर्वरूप है—वेदाध्ययन करनेवाला ब्राह्मण ओम् ऐसा उच्चारण करता हुआ कहता है— मैं ब्रह्म (वेद अथवा परब्रह्म) को प्राप्त करू इससे वह ब्रह्म को ही प्राप्त कर लेता है—ओमिति ब्रह्म । ओमितीद सर्वम् ॥—ओमिति ब्राह्मण प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति (वल्ली 1 अनुवाक 8-1) । मैत्रायण्युपनिषत् मे भी कहा गया है कि ओम् का ध्यान करते हुए पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा का उसके साथ सगठन करे क्योंकि ओम् की इन तीन मात्राओं मे ही यह सब ओतप्रोत है । अत ओम् अक्षर से ही सदैव उसकी प्रार्थना करनी चाहिए । इसी से एक मात्र उसके रस को समझा जा सकता है—स वा एष ओमित्येतदात्मा स त्रेधात्मान व्यकुरुत ओमिति तिस्रो मात्रा एताभि सर्वमिदमोत प्रोत चैवास्मिन्नित्येव ह्याहैत [redacted] आदित्य ओमित्येव ध्यायन्तथात्मान युञ्जीतेति ॥—तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीताजस्रमित्येको स्य रस बोधयीत (5/3/4) छान्दोग्य उपनिषद् मे भी इसी

तथ्य को दुहराया गया है कि ओंकार ही सब कुछ है—(फिर प्रजापति ने) उन अक्षरों का आलोचन किया। उन आलोचित अक्षरों से ओंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार शङ्कुओं (नसों) द्वारा सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं, उसी प्रकार ओंकार से सम्पूर्ण वाक् व्याप्त है। ओंकार ही सब कुछ है—ओंकार ही सब कुछ है—तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यऊंकार सम्प्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सतृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक्सतृण्णोंकार एवेद ँ सर्वमोंकार एवेद सर्वम् (2/23-3)।

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी यह उपदिष्ट किया गया है कि ॐ इस एक अक्षर को आत्मा (परमात्मा) के रूप में जानो और सब बात छोड़ो। अमृत का यह सेतु है—ओमित्येव जानीथ आत्मानम्, अन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतु।

बृहदारण्यकोपनिषद् में पवमान शब्दों के जप का विधान है—"अथात पवमानानामेवाभ्यारोह। स वै खलु प्रस्तोता साम प्रस्तौति। स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत् "असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय ..." अर्थात् अब यहां से आगे पवमान शब्दों का ही जप है। निश्चय से वह ही प्रस्तोता ऋत्विज साम को गाता है जो आगे कहे मन्त्र का जप करता है। जिस यज्ञ में वह साम-गायन करे, वहां इन वाक्यों को जपे, "हे भगवन्! मुझको असत् से सत् की ओर ले चल, मुझे अन्धकार से ज्योति की ओर ले चल" " (1/3/28)।

इसी उपनिषद् के याज्ञवल्क्यजरत्कारु पुत्र आर्तभाग संवाद में नाम का महत्त्व सर्वोपरि घोषित किया गया है। 'याज्ञवल्क्यति होवाच—यत्राय पुरुषो म्रियते किमेन न जहातीति? नामेति अनन्त वै नामानन्ता विश्वेदेवा अनन्तमेव स तेन लोक जयति" अर्थात् आर्तभाग ने कहा—'हे याज्ञवल्क्य! जिस अवस्था में यह ज्ञानी पुरुष मरता है इसको क्या वस्तु नहीं छोड़ती? उसने कहा नाम'—परमेश्वर के नाम का ध्यान इसको नहीं त्यागता निश्चय नाम अनन्त है, विश्वेदेव भी अनन्त है। वह नाम चिन्तक, नाम का जापक उस नाम चिन्तन से असंख्य लोकों को लाँघ कर नाशरहित धाम को प्राप्त करता है।" (3-3-12)

बौधायन स्मृति में बताया गया है कि धर्म का स्वरूप जानने के लिए वेदों के पश्चात् स्मृतियों को द्वितीय स्थान प्राप्त है क्योंकि स्मृतियाँ श्रुति के कहे हुए अर्थ का ही प्रतिपादन करती हैं—उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्॥—स्मार्तो द्वितीय (अपादो सदिष्ट धर्म लक्षणम् 1,3) मनुस्मृति में भी कहा गया है कि श्रुति और स्मृति में कहे हुए धर्म को मनुष्य करता हुआ इस संसार में यश की प्राप्ति किया करता है और मर कर परमोत्तम सुख प्राप्त करता है—श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् मानवः। इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् (2/9)। इससे स्पष्ट है कि स्मृतियों में अनुभवी मुनियों ने बीज रूप में वर्णित वैदिक सिद्धान्तों को क्रियात्मक

और व्यावहारिक रूप दिया है। जिस नाम-जप के संकेत वेदों और उपनिषदों में हमें प्राप्त होते हैं उसका विकास स्मृतियों के तीनों खण्डों—आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित अथवा दण्ड—में दृष्टिगोचर होता है। अधिकांश स्मृतियों में प्रणव तथा गायत्री अथवा सावित्री मन्त्र के जप की महत्ता वर्णित की गई है।

मनुस्मृति में ओंकार गायत्री तथा सावित्री की महत्ता का वर्णन करते हुए इसने जप का विधान किया है—'प्रजापति ने अकार, उकार, और मकार को तीनों वेदों से दोहन किया था। भूर्भुवः स्वः ये भी तीन वेदों में पाद पाद दुहे गए। सावित्री की तत् इस ऋचा का परमेष्ठी प्रजापति ने इसी प्रकार दोहन किया था। वेद का वेत्ता विप्र दोनों सन्ध्याओं के समय में इस अक्षर को और व्याहृतियों के साथ इस सावित्री को जपता हुआ वेद के पुण्य को प्राप्त करता है—अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः ॥ वेद त्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीतिच ॥ त्रिभ्यएवतु वेदेभ्य पाद पादमदूदुहत्। तदित्युचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः। एतदक्षरमेतान्चजपन् व्याहृतिपूर्विका। सन्ध्योर्वेदविद्विप्रो वेद पुण्येन युज्यते॥ 2/76-77-78॥ सावित्री मन्त्र का एक सहस्र बार जप करने वाला द्विज महान् पाप से भी एक मास में केंचुली से विनिर्गत सर्प की भांति विमुक्त हो जाता है—ब्राह्मण की संसिद्धि एक मात्र जप से ही होती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अन्य जो कुछ भी चाहे करे अथवा न करे। ऐसा ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है। सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिक द्विजः। महतो प्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते। —जाप्येनैव तु संसिद्ध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः। कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। 2, 79, 87॥ याज्ञवल्क्य स्मृति में गायत्री तथा सावित्री ब्रह्मचारी के लिए तथा सावित्री मन्त्रों के प्रतिदिन जाप का विधान लिखित है—स्नानम् ब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राण संयम। सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहञ्जपः। गायत्री शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्। प्रतिप्रणवसंयुक्ता त्रिरयं प्राण संयम॥ प्राणानायम्य सम्प्रोक्ष्य ऋचेनाब्दैवतेन तु। जप न्नासीत सावित्री प्रत्यगातारको दयात्। (ब्रह्म चारि प्रकरण वर्णनम्-22/23/24) प्रायश्चित प्रकरण में कहा गया है कि सहस्र शीर्षा मन्त्र का जप करने वाला पुरुष गुरु की शय्या पर अभिगमन करने के पाप से त्राण पाता है—सहस्र शीर्षाजापी तु मुच्यते गुरु तल्पगः ॥304॥ औशनस स्मृति में गायत्री मन्त्र के जाप की विधि तथा महत्व को इन शब्दों में वर्णित किया गया है—'वन में जाकर समाहित होकर नित्य ही एक सहस्र *गायत्री मन्त्र का अध्ययन (जाप) करे यदि इतना उत्तम न हो सके* तो एक शत मध्यम जाप करे, यह भी न हो तो अन्तिम दस संख्या का जाप करे। गायत्री का नित्य ही जप करना चाहिए जैसा कि तीन प्रकार का जप बतलाया गया है। प्रभु ने चारों वेद और गायत्री देवी को तुला में तोलते हुए एक में गायत्री को और एक ओर चारों वेदों को रखा था। गायत्री के जप की विधि यह है कि

आदि मे ओम् हो उसके पश्चात् तीन महाव्याहृतिया हो—जो वेदमाता गायत्री देवी का दिन मे मानरहित नित्य जप करता है और इसके अर्थ को समझते हुए जप करता है, वह ब्रह्मचारी परमपति को प्राप्त होता है। यह परम विज्ञान है और गायत्री से परम कोई भी जपने योग्य मन्त्र नही है।—गायत्रीमप्य धीयति गत्वारण्य समाहित । सहस्रपरमा देवी शतमध्या दशापराम् ॥ गायत्री वै जपेत्रित्य जपश्चत्रि. प्रकीर्तित । गायत्री चैव वेदाश्च तुलयातुलयन् प्रभु एकतश्चतुरो वेदान् गायत्री च तथैकत । ओकारमादित कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम । योऽधीतेऽह्न्यमाले ता गायत्री वेदमातरम् । विज्ञायर्थं ब्रह्मचारी स याति परमागतिम् ॥ न गायत्र्या पर जप्यमेत द्विजानमुच्यते ॥ (ब्रह्मचारिणा, क्रमागत कर्त्तव्य वर्णनम् 154-156, 161-2)।

वसिष्ठ स्मृति मे सावित्री जप की महिमा के विषय मे कहा गया है कि सूर्योदय के समय आठ सहस्र सावित्री का जप करके मनुष्य यदि ब्रह्महा नही है तो समस्त पापो से मुक्त हो जाता है—सावित्र्यष्ट सहस्र तु जप कृत्योत्थिते रवौ। मुच्यते पातकै सर्वैर्यदि नो ब्रह्महा भवेत् ॥ वेदाध्ययन प्रशसा वर्णनम् ॥274॥ शातातप स्मृति मे पक्वान्न की चोरी करने वाले के लिए प्रायश्चित के रूप मे एक लक्ष गायत्री मन्त्र के जप का विधान वर्णित किया गया। अनुचित व्यवहार फल सम्बन्धी प्रसग मे स्वात्म शुद्धि के लिए गायत्री के जप को आवश्यक ठहराया गया है—पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोग प्रजायते। गायत्र्या स जपेल्लक्षंदशाश जुहुयात्तिलै ॥—गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जप-स्वात्मविशुद्धये ॥ स्तेय प्रायश्चितम् 125, अनुचित व्यवहार फलम् 164 ॥ आगिरसस्मृति क प्रायश्चित विधान वर्णन मे कहा गया है कि यदि गौ लाठी के प्रहार से गिर जावे अथवा मूर्च्छित हो जाए तो उसके विशोधन के लिए गायत्री मन्त्र का आठ सहस्र जप करना चाहिए,—मूर्च्छित पतित चापि गवि यष्टि प्रहारिते ॥ गायत्र्याष्ट सहस्रन्तु प्रायश्चित विशोधनम् ॥ 34 ॥ कात्यायन स्मृति मे एकादश खण्ड मे वैदिक जप के पश्चात् रुद्र सर्व का उपस्थान वर्णित है—वेदमादित आरभ्य शक्ति तोऽहरहर्जपेत्। उपतिष्ठेत्ततो रुद्रसर्वाद्वा वैदिकाज्जपात् सन्ध्यो पासन विधि वर्णनम् 17 ॥ विष्णु स्मृति मे वेद-पाठ तथा गायत्री-जप का समान महत्व इन शब्दो मे प्रतिपादित किया गया है—'प्रजापति ने अकार-उकार और मकार को अर्थात् ओम् इस प्रणव को जिसमे उपर्युक्त तीनो वर्ण होते हैं—और 'भूर्भुव स्व' उसको तीन वेदो से उद्धृत किया है। तीनों वेदो से एक-एक पाद का उद्धृत किया है—इन अक्षरो से युक्त व्याहृतियो के सहित इस गायत्री मन्त्र की दोनों सन्ध्याओं के समय मे जप करने वाला वेद के विद्वान् का जो वेद पाठ से पुण्य होता है वही पुण्य गायत्री जापक को भी प्राप्त होता है—अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारच प्रजापति । वेद त्रयान्निरदुहद्-भूर्भुव स्वरितीति च। त्रिभ्य एव च वेदेभ्य पाद पादमदुदुहत् —एत दक्षर-

मेताच्च जपन् व्याहृति पूर्विकाम् । सन्ध्ययोर्वेदविदुषो वेद पुण्येन युज्यते ।। अथ रहस्य प्रायश्चित्तानि भवन्ति ।। पराशर स्मृति मे प्रायश्चित के रूप क गोघातक के लिए पवित्र मन्त्रो के जप का विधान वर्णित है —प्रायश्चिते ततश्चीर्णे कुर्य्याद् ब्राह्मण भोजनम् । विप्राय दक्षिणा दद्यात् पवित्राणि जपद्द्विज ।। गर्भाचरण वर्णनम् 208 ।। सम्वर्त स्मृति म ब्रह्मचर्य वर्णन मे ब्रह्मचारी के लिए जप का विधान इन शब्दो म वर्णित है। प्रात काल म ब्रह्मचारी को समाहित होकर खडे रहते हुए जप करना चाहिए। पश्चिम सन्ध्या म निरालस्य बैठ कर जप करे।··· जो द्विज बिना ही आसन किए भोजन या पान करता है उसका प्रायश्चित तभी होता है जब आठ सहस्र गायत्री मन्त्र का जप कर। नित्य सावित्री का जप तथा शक्तिपूर्वक अन्य पवित्र मन्त्रो का जप करे। इस लोक म किए हुए तथा अन्य जन्म कृत विशेष करके समस्त पापो को ब्राह्मण पाच ही दिन गायत्री के जप से नष्ट कर देता है' महा व्याहृतियो से युक्त और प्रणव से युक्त गायत्री का जप करता हुआ विप्र सब पापो से छूट जाता है। ब्रह्मचर्य से रह कर मित भोजन करता हुआ समस्त प्राणियो पर हित की भावना रखने वाला ब्राह्मण एक लक्ष गायत्री का जप करके समस्त पापा से मुक्त हो जाता है।' जो विप्र सदा समाहित होकर नियत रूप से गायत्री का जप किया करता है, वह शुचि विप्र मूर्तिमान होकर वायु स्वरूप परम स्थान को प्राप्त हो जाता है ' पावमानी कौत्स और पुरुष सूक्त को जप करके तथा मधुच्छन्दम् के पित्र्य का जप करके समस्त प्रकार के पापो म मनुष्य मुक्त हो जाता है—तिष्ठन् पूवा जप कुर्य्याद् ब्रह्मचारी समाहित आसीन पश्चिमा सन्ध्या जप कुर्य्यादतन्द्रित ।। अनाचान्त पिबेद्यस्तुयोऽपि वा भक्षयेद्द्विज् ।। गायत्र्यष्ट सहस्रन्तु जप कृत्वा विशुध्यति ।। सावित्रीञ्च जपेन्नित्य पवित्राणि यथाशक्ति ।। ' ।। ऐहिकामुष्मिक लोके पाप सर्व विशेषत पञ्चरात्रेण गायत्री जपमानो व्यपोहति ।। गायत्र्यास्तु पर नास्ति शोधन पापकर्मणाम् ।। महाव्याहृति समुक्ता प्रणवेन सयुताम् गायत्रा प्रजपन् विप्र सर्वपापै प्रमुच्यते ।। ब्रह्मचारीमिताहार सर्वभूत हितेरत गायत्र्या लक्षजप्यन सर्वपापै प्रमुच्यत ।। गायत्री य सदा विप्रो जपते नियत शुचि । सयाति परम स्थान वायुभूत स्वमूर्तिमान् ।। पावमानी तथा कौत्स पौरुष सूक्तमेव च । जप्त्वा मापै प्रमुच्यत पित्र्यञ्च मधुच्छन्दसाम् ।। 7, 14, 133, 213, 214-5, 219, 224 ।। दक्षस्मृति म वेद के पाच प्रकार के अभ्यासो म जप का विशिष्ट स्थान माना गया है—'आरभ म वेद का अध्ययन फिर उसका विचार तथा इसके पश्चात् अभ्यास एव जप और फिर शिष्यो को वेद ज्ञान का दान—इस प्रकार वेद का अभ्यास पाच प्रकार का होता है—वेदस्वीकरणपूर्वं विचारोऽभ्यसन जप । ततो दान च शिष्येभ्यो वदाभ्यासोहि पचधा ।। 2-26 ।। वेद व्यास स्मृति मे तीसरे अध्याय मे वर्णित सस्नानादि विधि पूर्वाह्न कृत्य वर्णन मे कहा गया है कि गृहस्थी खडे होते हुए या बैठ कर गायत्री मन्त्र

का जप करे—तिष्ठन् स्थित्वा तु गायत्री तत स्वाध्यायमारभेत्—। 9 ।। हारीत स्मृति में वेदमाता गायत्री के जप का विधान, जप के प्रकार तथा महत्व का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता गया है। लिखा गया है कि बुद्धिमान पुरुष को यथा-विधि तीन बार प्राणायाम आलस्य का त्याग कर अवश्य ही करना चाहिए। इसके पश्चात् वेदमाता गायत्री का जप करना चाहिए। उच्च तथा नीचे स्वरो द्वारा वाणी से उच्चारण किए गए स्पष्ट शब्द, पद और वर्ण वाले मन्त्रों का उच्चारण करना ही वाचिक जप यज्ञ है। धीरे-धीरे मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुछ-कुछ ओठों को जिसमें चलाता जाए जो कि कुछ श्रवण योग्य हो, वह उपांशु जप कहा गया है। पद और अक्षरो की श्रेणी बुद्धिस्थ ही हो और वर्ण-पद तथा अक्षर रहित हो और शब्दार्थ का चिंतन मानस में ही रहे उसे मानस जप कहा गया है। जप के द्वारा नित्य ही स्तुति किए गए देवगण प्रसन्न होते हैं—जप करने वाले पुरुषों के पास राक्षस पिशाच और भीषण महासर्प नहीं जाते हैं। एवं सहस्र गायत्री का प्रतिदिन जप करे। यदि इतना न हो सके तो अष्टोत्तरशत जाप करना चाहिए यह जाप मध्यम श्रेणी का है और यदि यह भी न बन पावे तो कम-से-कम दस बार तो अन्तिम श्रेणी का जप अवश्य ही कर लेना चाहिए। जो मनुष्य प्रतिदिन नियम से गायत्री जप करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।—प्राणायाम त्रय धीमान् यथान्यायमतन्द्रित। जप यज्ञं तत कुर्याद् गायत्री वेदमातरम् ।। त्रिविधो जपयज्ञ स्यात्तस्य तत्वं निबोधत ।। वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृति त्रयाणामपि यज्ञाना श्रेष्ठ स्यादुत्तरोत्तर ।। यदुच्चनीचोच्चरितै शब्दै स्पष्ट-पदाक्षरै। मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ।। शनैरुच्चारयन्मन्त्र किंचिदोष्ठौ प्रचालयत्। किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुजप स्मृत ।। धिया पदाक्षर श्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम्। शब्दार्थ चिन्तनाभ्यान्तु तदुक्त मानस स्मृतम् ।। जपेन देवता नित्य स्तूयमाना प्रसीदति।—राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च-भीषणा। जपितान्नोपसर्पन्ति। —सहस्रपरमा देवी शतमध्या दशावराम् ।। गायत्रीं यो जपेन्नित्य स न पाते न लिप्यत ।। गृहस्थाश्रमधर्म वर्णन 4/39-48 ।। इस स्मृति में सन्यासी के लिए भी कहा गया है कि वह निरन्तर गायत्री का जप करते हुए परमपद का ध्यान करे—गायत्री च यथाशक्ति जपत्वा ध्यायेत् परपदम्। सन्यासधर्म वर्णन। 6/11। दक्ष स्मृति के बारहवें अध्याय में विस्तारपूर्वक गायत्री मंत्र की जप विधि और इसके जाप से दूर होने वाले कल्मषों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'सावित्री के समान अन्य अपने योग्य कुछ भी नहीं है—।। कुशमय आसन पर आसीन होकर कुश का ही उत्तरीय वाला कुशा को पवित्री हाथ में रख कर पूर्वाभिभूत होकर अक्ष माला लेकर देवताध्यायी का जप करना चाहिए ।। सुवर्ण, मणि मुक्ता, स्फटिक पद्माक्ष रुद्राक्ष, पुत्र जीवक इनमें से किसी भी एक को लाकर माला बना लेनी चाहिए ।। कुश ग्रन्थि बना कर बाएं हाथ के उपयम से

गणना करे।—व्याहृतियों के साथ और प्रणव के साथ सिर के सहित जो पुरुष सदा गायत्री का जप करते हैं, उनको कहीं भी कोई भय नहीं होता है॥ गायत्री का सौ बार जप करने से दिन भर के पापों का नाश हो जाता है, यदि एक सहस्र जप करे तो गायत्री देवी समस्त पातकों से उद्धार कर देती है। इस सहस्र गायत्री का जप करके मनुष्य सारे कल्मषों का नाश कर देता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला ब्राह्मण, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, गुरु तल्पगामी, सुरा पीने वाला एक लक्ष गायत्री का जप करने से निस्सन्देह शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण की जप से ही सिद्धि होती है। अन्य कुछ करे अथवा न करे ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है। उपांशु जप का सौगुना तथा मानस जप का सहस्र गुना फल होता है॥— सावित्री देवी के जप में निरत मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। गायत्री के जाप में निरत मोक्ष के उपाय पा जाता है। अतः सब प्रकार के प्रयत्नों से स्नान करके प्रयत मन से समस्त पापों के प्रणाश करने वाली गायत्री का भक्ति के साथ जप करना चाहिए॥ न सावित्र्या सम जप्य—कुशासन्यामासीन कुशोत्तरीयवान् कुशपवित्रपाणि प्राङ्मुख सूर्याभिमुखो वाक्षमालामुपादाय देवताध्यायी जप कुर्यात्॥ सुवर्ण मणि मुक्ता स्फटिक पद्माक्षरुद्राक्षपुत्र जीवका नामन्यतमेना दाय माला कुर्यात्॥ कुश ग्रन्थि कृत्वा वाम हस्तो पयर्मवा गणयेत्॥ सव्याहृति स प्रणवा गायत्री शिरसा सह। ये जपन्ति सदा तेषा न भय विद्यते क्वचित्॥ शत जप्त्वा तु सा देवी दिन पाप प्रणाशिनी। सहस्र जपत्वा तु तथा पातकेभ्य समुद्धरेत्॥ देश सहस्र तु सर्व कल्मषनाशिनी॥ सुवर्णस्तेय कृद्विप्रो ब्रह्म हा गुरु तल्पगः॥ सुरापश्च विशुध्येत लक्षजप्यान्न सशय॥—जपेनैव तु ससिध्यद् ब्राह्मणो नात्र सशय॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥ उपाशु स्याच्छतगुण साहस्रो मानसः स्मृत॥ सावित्री जाप्यनिरत. स्वर्गमाप्नोति मानव गायत्री जप्यनिरतो मोक्षोपाय च विन्दति॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नात प्रायतमानस। गायत्री तु जपे द्भक्त्या सर्वपाप प्रणाशिनीम्॥ गायत्री जपविधि वर्णनम् 2, 6, 14-17, 27-31॥ मार्कण्डेय स्मृति में ब्राह्मण के लिए वेद के जप का महत्व प्रतिपादित किया गया है। कहा है, 'महर्षि गोभिल का मत है कि वेद और वेदी अर्थात् वेदज्ञाता में कोई भेद नहीं होता है। अतएव नित्य वेद का ही जप करना चाहिए। यथाकाल ठीक समुचित समय पर निरालस्य होकर ही वेद का पाठ एव जाप करना चाहिए। ब्राह्मण को अन्य के जप से क्या प्रयोजन है, नित्य वेद को सर्वोपरि मानते हुए इसी में तत्पर रहना चाहिए। (सद्ब्राह्मणाना भिन्नपङ्क्त्युपवेशननिषेध.—वेदस्य वेदिनश्चापि न भेद इति गोभिल॥ वेदमेव जपेन्नित्य यथाकाल मतन्द्रित। जप तरेण कि तस्य नित्य वेदजप पर॥) इसी स्मृति में गायत्री के जप का भी विधान किया गया है।—उक्त महा महिमान्वित वेद की जननी गायत्री है। इसके केवल जाप से ब्राह्मण्य भली-भांति स्थिर हो जाता है—गायत्री से बड़ा और

उत्तम अन्य कोई भी मन्त्र नही है।—केवल इसी एक गायत्री मन्त्र के जप से समस्त अन्य मन्त्रो के जप की सिद्धि प्राप्त हो जाती है—गायत्र्या वेदमातुस्तु जपमात्रेण केवलम्। ब्राह्मण्य सुस्थिर सम्यग्गायत्री तादृशी शिवा ॥—न गायत्र्या परा-मन्त्र —। यज्जपेनाखिलजप सिद्धो भवति सन्ततम् ॥ इसी महामन्त्र गायत्री का जप तीनो समयो मे सन्ध्या के उपासना काल मे प्रतिदिन ब्राह्मण मात्र को करना चाहिए—सर्वाचार्य सर्वगुरु कृतार्थश्चापि जायते। तज्जयो विप्रसाम्यस्य त्रिसन्ध्यासु दिने दिने ॥

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि स्मृतियो मे (1) जप को ब्रह्मचारी, गृहस्थी, सन्यासी और वानप्रस्थी की दैनिक क्रियाओ का महत्त्वपूर्ण अग माना गया है। (2) निश्चित सख्या मे जाप करने से महान् से महान् पातको का नाश होता है। (3) गायत्री अथवा सावित्री जाप की महत्ता सर्वोपरि है। (4) प्रणव सहित गायत्री या सावित्री का जाप ही परम श्रेयस्कर है। (5) गायत्री या सावित्री को वेदो का सार माना गया है। जैसे ही जैसे प्रणव को जो ब्रह्म का ध्वन्यात्मक नाम है तथा जिसकी झीनी तथा अपूर्ण छाया ओम् द्वारा व्यक्त होती है, वेद का सार माना है। (6) अत प्रणव सहित गायत्री अथवा सावित्री मन्त्र जाप 'नाम जप' है।

'ओम्' परमात्मा का नाम है, ऐसा योगदर्शन म भी वर्णित है। इसीलिए पतजलि ऋषि ने भगवन्नाम-जप को समाधि का साधन बताते हुए ईश्वर के प्रणि-धान (उपासना) से भी समाधि सिद्ध होती है। क्लेश, कर्म, विपाक, आशय, इन चारो से रहित जो परम आत्मा है, वह ईश्वर है। उस ईश्वर म (निरतिशय) सबसे ऊची स्थिति की सर्वज्ञता है। वह ईश्वर पूर्व उत्पन्न ब्रह्मादिका का भी गुरु है क्योकि वह काल से परिच्छिन्न (परिमित) नही है। उस ईश्वर का नाम 'प्रणव' ओम् है। प्रणव का जप और अर्थ विचारने से समाधि का लाभ होता है ईश्वर प्रणिधानाद्वा। क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर। तत्र निरतिशय सर्वज्ञबीजम्। स एव पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्। तस्य वाचक प्रणव। तज्जप एतदर्थभावनम् ॥ 1/23-28 ॥ मुण्डकोपनिषद मे भी प्रणव जप की विधि बताते हुए कहा है कि प्रणव अर्थात् ओम् को धनुष तथा आत्म को बाण बनाकर इस प्रणव रूपी धनुष पर अपनी आत्मा रूपी बाण को चढ़ाकर भक्त अपने लक्ष्य पर सधान करता है। ब्रह्म रूपी लक्ष्य को प्रमादरहित होकर वेधना चाहिए। जैसे तीर अपने लक्ष्य के साथ तन्मय हो जाता है, वैसे ही आत्मा ब्रह्म के साथ तन्मय हो जाता है। प्रणवो धनु शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ मुण्डकोपनिषद् ॥ 2/4 ॥ ध्यान बिन्दु उपनिषद् मे इसी वक्तव्य की पुष्टि इन शब्दो मे की गई है—'इस प्रकार ओमकार को जो नही जानता, वह ब्राह्मण नही माना जा सकता। यह प्रणव धनुष है, आत्मा बाण

है और ब्रह्म लक्ष्य है। बाण से सावधानी के साथ तन्मय होकर इस लक्ष्य को विद्ध करने से और अवर को जान लेने से सब क्रियाएं निवृत्त हो जाती हैं।··· ओंकार यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेन्मुरा । प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य-मुच्यते । अप्रमतेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् । निवर्तन्ते क्रिया सर्वास्तस्मिन् दृष्टि परावरे ॥ 14/15 ॥

गीता मे भगवान श्रीकृष्ण यज्ञो मे जप यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। अपनी विभूतियो का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि महर्षियो मे मैं भृगु हू। शब्दो मे एकाक्षर प्रणव हू यज्ञो मे जपयज्ञ हू तथा स्थावरो मे हिमालय हू—महर्षीणा भृगु-रह गिरामस्म्येकाक्षरम् । यज्ञाना जपयज्ञोस्मि स्थावराणा हिमालय ॥ गी० 10-35 । इसी जप यज्ञ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए महराज मनु कहते हैं— कर्मयज्ञ के चार पाकयज्ञ हैं, वे जप यज्ञ के सोलहवें अश के समान भी नही हैं— ये पाकयज्ञश्चत्वारो विधियज्ञ समन्विता । सर्वे ते जपयज्ञस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥ मनु 2/86 ॥

महाभारत में नाम-जप

महाभारत मे जप की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्राट युधिष्ठर महात्मा भीष्म पितामह से इस सबंध मे निम्नलिखित प्रश्न पूछते हैं, "हे भरतनन्दन ! जप करने वालो को फल की प्राप्ति कैसे होती है। जापको के जप का फल क्या बताया गया है अथवा जप करने से जापक किन लोको मे स्थान पाते है। जप की सपूर्ण विधि क्या है।" जापक पद मे क्या तात्पर्य है। क्या यह साख्य योग, ध्यान योग या क्रिया योग का अनुष्ठान है। अथवा यह जप भी कोई यज्ञ की ही विधि है। जिसका जप किया जाता है, वह क्या वस्तु है।

(महाभारत-शान्तिपर्व/196/3-5)

महात्मा भीष्म पितामह सम्राट युधिष्ठर के भिन्न-भिन्न प्रश्नो का उत्तर देते हुए जापक ब्रह्मचारी साधक के लिए निवर्तक यज्ञ की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं तथा साथ ही इस यज्ञ की विधि इन शब्दो मे वर्णित करते हैं "जप कर्त्ता को कुशासन पर बैठना चाहिए। उसे अपने हाथ मे भी कुश रखना चाहिए। शिखा मे भी कुश बाध लेना चाहिए, वह कुशो से घिर कर बैठे और मध्यभाग भी कुशो से आच्छादित रहे। विषयो को दूर से ही नमस्कार करे······मन को मन मे ही लय करे। फिर बुद्धि के द्वारा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करे तथा सर्व-हित कारिणी वेद-सहिता का एव प्रणव एव गायत्री मत्र का जप करे फिर समाधि मे स्थित होने पर उस सहिता एव गायत्री मत्र आदि के जप को भी त्याग दे।···सहिता के जप से जो बल प्राप्त होता है, उसका आश्रय लेकर साधक अपने ध्यान को सिद्ध कर लेता है···।" (शान्ति पर्व/196/13-17) यहा ऐसा प्रतीत

होता है कि जप निर्जीव समाधि प्राप्त करने का एक साधन मात्र है।

आगे चलकर महात्मा भीष्म पितामह पथभ्रष्ट जापको की गति का वर्णन करते हुए बताते हैं कि किस प्रकार वे नाना प्रकार के नरको मे पडते हैं या जन्म-मरण के चक्र मे उलझे रहते हैं। ऐसे नरकगामी जापक निम्नलिखित हैं (1) जो नियमो का ठीक-ठीक पालन नही करता या किसी एक ही नियम का पालन करता है। (2) जो अवहेलनापूर्वक जप करता है। (3) जो अहकारी है (4) जो मोहित हो फल की इच्छा रख कर जप करता है (5) जो अणिमादि सिद्धियो को प्राप्त कर उनम अनुरक्त हो जाता है। (6) जो मोह के वशीभूत हुआ विषयासक्तिपूर्वक जप करता है (7) जो मन के चचल रहते हुए भी जप करता है (8) जो मोहग्रस्त हो जाता है। (9) जो सकल्पित जप का अनुष्ठान पूरा नही करता (शान्तिपर्व/197/2 12)

पितामह बताते हैं कि जापक ध्यान निष्ठ हो ध्यान के द्वारा ही तत्व का निश्चय कर लेता है। वह ध्यान म समाधिस्थ होकर क्रमश ध्यान रूप क्रिया का भी त्याग कर देता है। उस अवस्था म स्थित हुआ जापक सर्वत्याग रूप निर्बीज समाधि से प्राप्त होने वाले दिव्य परमानन्द का अनुभव करता है तथा सर्वथा निष्काम प्राणो का परित्याग कर देता है और विशुद्ध परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप मे प्रवेश कर जाता है" यदि वह परब्रह्म का सायुज्य नही प्राप्त करना चाहता तो देवयान मार्ग पर स्थित हो ऊपर के लोको म गमन करता है तथा पुन इस ससार म कही जन्म नही लेता (शान्ति पर्व/196/20 22)

पितामह के अनुसार भिन्न भिन्न देवताओं जैस वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम, शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण विश्वदेव, साध्य, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु आदित्यादि के दिव्य लोक परमात्मा के परमधाम की तुलना म आत्मर्श्वरय-प्राप्त जापक के लिए नरक क समान हैं (शान्तिपर्व/198/5-6) अपने इस वचन की पुष्टि पितामह उस इतिहास का उदाहरण देकर करते हैं जिसम राजा इक्ष्वाकु, सूर्यपुत्र यम, ब्राह्मण, काल और मृत्यु क वृतान्त का उल्लेख है (शान्तिपर्व/199/2-3) अपने इस मतव्य का स्पष्टीकरण करते हुए भीष्म जी जापक को प्राप्त होन वाली गति का पुन वणन करते है सहिता का जप करने वाला पुरुष राग मुक्त होने पर चन्द्रलोक, वायु लोक, भूमिलोक तथा अन्तरिक्ष लोक के योग्य शरीर धारण करके यहा निवास करता है यदि उन लोको की उत्कृष्टता मे सदेह हो जाए और इस कारण वह जापक वहा से विरक्त हो जाए तो वह उत्कृष्ट एव अविनाशी मोक्ष की इच्छा रखता हुआ फिर उसी परमेष्ठी ब्रह्म मे प्रवेश कर जाता है। अन्य लोको की अपेक्षा परमष्टिभाव की प्राप्ति अमृत रूप है। उसमे भी उत्कृष्ट कैवल्य रूपी अमृत को प्राप्त होकर वह शान्ति, अहकार शून्य, निर्द्वन्द, सुखी, शान्ति परायण तथा रोग शोक स रहित ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। ब्रह्मपद पुनरावृत्ति

रहित एव, अविनाशी, सज्ञा रहित, दुखशून्य अजर और शान्त आश्रय है उसे ही वह जापक प्राप्त होता है। जापक पूर्वोक्त परमेष्ठी पुरुष (सगुण ब्रह्म) से भी ऊपर उठ कर आकाश रूप निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है । यदि उसके मन म भोगो के प्रति राग है और वह निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होना नही चाहता तो वह सभी पुण्य लोगो का अधिष्ठाता वन जाता है और मन म जिस वस्तु को पाना चाहता है उस तुरन्त प्राप्त कर लेता है। अथवा वह सम्पूर्ण उत्तम लोको को भी नरक के तुल्य देखता है और सब ओर से निस्पृह एव मुक्त होकर उस निर्गुण म ब्रह्म सुखपूर्वक स्मरण करता है।' (शान्ति पर्व 199/120 127)

ऊपरलिखित प्रसग क अन्त मे यह बताया गया है कि जापक को योगियो से भी श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है क्योकि समाधिस्थ जापक ब्राह्मण के ब्रह्म रन्ध्र से निसृत ज्योतिर्मयी विशाल ज्वाला, जो कुछ समय पश्चात् प्रदश क बराबर लम्बे पुरुष का आकार धारण कर लेती है, ब्रह्मा जी क पास जब पहुचती है तो वे आगे बढकर उसका स्वागत करते हुए कहते हैं 'विप्रवर योगिया को जो फल मिलता है, निस्सन्देह वही फल जप करने वाले को भी प्राप्त होता है। योगियो को जिस फल की प्राप्ति होती है वह इन सभासदो ने प्रत्यक्ष देखा है किन्तु जापको को उससे भी श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है यह सूचित करने क लिए ही मैंने उठकर तुम्हारा स्वागत किया है।'' (शान्तिपर्व/200/20 25)

महाभारत म वर्णित प्रसगो स निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं —

1 जप वेद सहिता (प्रणव और गायत्री) का करना चाहिए।
2 जप कुशा आसन पर बैठ कर किया जाना चाहिए।
3 जप विधि विधान के अनुसार करना चाहिए नही तो नरक की प्राप्ति होती है।
4 जापक अपनी इच्छानुसार उच्च से उच्चतम लोक को प्राप्त कर सकता है।
5 जापको को योगियो से भी श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होतीहै। (शान्तिपर्व/200/27)

पुराणो में वेदो का विस्तार ही है। जो बातें परोक्ष रूप म कही गयी हैं, उनको अनमन रजनकारी शैली म पुराणकारो न कथाओ के माध्यम से स्पष्ट किया है। कहा भी गया है कि देवगण परोक्ष प्रेमी होते हैं और प्रत्यक्ष के द्वेषी—परोक्ष प्रिया हि देवा प्रत्यक्ष द्विष । वेदो म स्थान-स्थान पर वर्णित किया गया है कि भगवान् की अनन्त शक्तिया, विभूतियां तथा गुण हैं तथा उन शक्तियों, विभूतियो और गुणो क सूचक अनन्त नाम हैं। इसी तथ्य को महामुनि सूत न श्रीमद्-भागवत सहिता को उपस्थित करते समय इन शब्दो म कहा था—'या तत्व-

दर्शियों का परम तत्त्व हैं, वे सच्चिदानन्दघन हैं। वे ही ब्रह्म वेत्ताओं के परब्रह्म हैं। वे ही योगियों के परमात्मा हैं और वे ही भक्तों के भगवान् हैं। वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते 1,2/11। अत पुराणकारों ने जिज्ञासुओं के रुचि वैभिन्न्य को देखते हुए भगवान् के अनेकों नामों का प्रचार किया। पतंजलि ऋषि ने भी कहा है कि जिसको जो अभिमत हो उसके ध्यान से मन स्थिर होता है —यथाभिमत ध्यानाद्वा 1/39 ॥ पुराणों द्वारा प्रचारित नाम वर्णात्मक हैं अर्थात वे वर्णमाला के अक्षरों को मिलाकर बनाए गए हैं जैसे हरि राम कृष्ण नारायण दुर्गा चण्डी आदि। पुराणों में इन वर्णात्मक नामों का जप का विधान उसी ढंग का प्राप्त होता है जैसा कि स्मृतियों में प्रणवयुक्त गायत्री या सावित्री मन्त्र का। लगभग सभी पुराण गुरु नानक के आविर्भाव से पहले अपने आधुनिक रूप में विद्यमान थे। मध्ययुग को पुराण युग भी कहा जाता है। अत यह समीचीन होगा कि हम पुराणों में वर्णित नामजप के माहात्म्य पर भी दृष्टिपात करें।

भिन्न भिन्न पुराणों में स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया गया है कि काल काल में साधारण नाम जप तप आदि का पुण्यफल अन्य युगों में किए हुए घोर तपादि के पुण्यफल से कहीं अधिक होता है — "जो फल सत्ययुग में दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करने से प्राप्त होता है, उसे मनुष्य त्रेता में एक वर्ष, द्वापर में एक मास और कलिकाल में केवल एक दिन-रात में प्राप्त कर लेता है। इस कारण ही मैंने कलियुग को श्रेष्ठ कहा है। जो फल सत्ययुग में ध्यान त्रेता में यज्ञ और द्वापर में देवार्चन करने से प्राप्त होता है वही कलि में केशव का नाम कीर्तन करने से मिल जाता है—यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेनतत्। द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥ तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजा। प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम् ॥ ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ श्री विष्णु पुराण 6/2/15-17॥ श्रीमद्भागवत में भी इस धारणा की पुष्टि इन शब्दों में की गई है—"सत्ययुग में विष्णु के ध्यान का जो फल होता है, त्रेता में उनके लिए किये जाने वाले यज्ञ का जो फल होता है, द्वापर में उनकी परिचर्या से जो फल होता है, कलियुग में श्रीहरि के कीर्तन से वही फल प्राप्त होता है"—कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात् ॥ 12/3/52 ॥

पद्मपुराण में मातलि द्वारा प्रेषित इन्द्र के स्वर्ग सम्बन्धी निमन्त्रण को ठुकरा कर राजा ययाति इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने की इच्छा से अपने प्रजावर्ग के लिए नामामृत-पान का सन्देश प्रचारित करता है। उसके दूत सारी पृथ्वी पर घूम-घूम कर सारी प्रजा को महाराज का आदेश इस प्रकार सुनाने लगे, "भगवान् केशव सबका क्लेश हरने वाले, सर्वश्रेष्ठ आनन्दस्वरूप और परमार्थ तत्त्व है।

उनका नाममय अमृत सब दोषो को दूर करने वाला है। महाराज ययाति ने उस अमृत को यही लाकर सुलभ कर दिया है। ससार के लोग इच्छानुसार उसका पान करें"—श्रीकेशव क्लेशहर वरेण्यमान-दरूप परमार्थमेव। नामामृत दोष हर तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोका॥ पद्मपुराण भूमिखण्ड 73/10॥ पदम-पुराण के उत्तर खण्ड मे भगवान सदाशिव पार्वती जी को रामनाम की महत्ता वर्णन करते हुए कहते हैं—'देवि! तुम्हारी वैष्णवी भक्ति बहुत श्रेष्ठ है। भगवान् विष्णु के सभी नाम वेदो के पाठ-श्रवण-फल से अधिक फल-प्रद कहे गये हैं किन्तु श्रीराम नाम की महिमा विष्णु सहस्र नाम के तुल्य ही कही गयी है। अत देवि' पार्वती! जिन-जिन दूसरे नामो के आदि मे भी 'रकार' आता है, उन्हे सुनकर राम नाम की अभिशका से मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है, अत महादेवी! तुम उस श्रीराम-नाम का ही उच्चारण करके इस समय मेरे साथ भोजन कर लो—राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्य राम नाम वरानने॥ रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति। मन प्रसन्नता याति राम नामाभि शकया॥ रामेत्युक्त्वा महादेवि! भुक्ष्व सार्धं मयाधुना॥ (पद्मपुराण उत्तरखड, मोरसस्करण, 254/22-23, आनन्दाश्रम सस्करण 281/21-22)॥

श्री प्रह्लाद, महर्षियो को भगवान विष्णु के स्थान का परिचय बताने के पश्चात्, द्वारावती पुरी के माहात्म्य वर्णन के अत मे कहते हैं—"महाभाग! कलिकाल के समान दूसरा कोई युग नही है, इसमे भगवान् के स्मरण कीर्तन से मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है। जो कलियुग मे नित्यप्रति 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' का उच्चारण करेगा, उसे प्रतिदिन दस सहस्रो यज्ञो और करोडो तीर्थों का पुण्य प्राप्त होगा। जो कलिकाल मे प्रतिदिन जागते और सोते समय 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' का कीर्तन करता है, वह श्रीकृष्ण स्वरूप हो जाता है। —नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमयुगम्। स्मरणात् कीर्तनाद् विष्णो प्राप्यते परम पदम्॥ कृष्ण कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्। नित्यमज्ञायुत पुण्य तीर्थ कोटिसमुद्भवम्॥ कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्य जाग्रत् स्वपश्च य। कीर्तयेत्तु कलौ चैव कृष्णरूपी भवेद्धि स॥ द्वा 38/44-45, 39/1॥ स्कन्द पुराण मे भी जपयज्ञ की महानता इन शब्दो मे प्रकट की गई है—'समस्त पुण्यो, प्रेम के सम्पूर्ण साधनो और समस्त यज्ञो में जपयज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है—सर्वेषामपि पुण्याना श्रेयसामपि। सर्वेषामपि यज्ञाना जपयज्ञ पर स्मृत (ब्रा० ब्रह्मो० 1/7) इसी पुराण मे 'ओम् नम शिवाय' के जप का महत्त्व बताते हुए इसे सर्वजन सुलभ कहा गया है—जिसके हृदय मे 'ओम नम शिवाय'—यह मत्र निवास करता है, उसके लिए बहुत से मत्र तीर्थ, तप और यज्ञो की क्या आवश्यकता है—अत यह पचाक्षर मत्र सब कुछ देने वाला माना गया है। इसे मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले स्त्री समुदाय शूद्र और वर्णसकर—सभी धारण कर सकते हैं। इस मत्र के लिए दीक्षा होम सस्कार,

तर्पण, समय शुद्धि तथा गुरुमुख से उपदेश आदि की आवश्यकता नहीं है। यह मंत्र सदा पवित्र है""""नि तस्य वर्तुमिमंन्त्रे वि तीर्थं नि तपो ध्वरे। यस्यो नम शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचर ॥ तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्र सो य पवाक्षर स्मृत। स्त्रीभिः शूद्रैश्च सर्वोर्णैर्यते मुक्तिकाङ्क्षिभि ॥ नास्यदीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरय मनु—वा० संहि० 7/167, 1/20-21 ॥

आदि पुराण में भगवान अर्जुन से कहते हैं,—"कि हे अर्जुन! (अतएव) तू दृढ़ चित्त से नाम भजन कर नामयुक्त, मेरे प्रिय! तू नामयुक्त हो! अरे, कलियुग में मैं नामरूप से आया हूँ—तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढमानस। नामयुक्त प्रियो स्माकं नामयुक्तो भवार्जुन॥ हे पार्थ श्रद्धा या अवहेलना से जो मेरा नाम रटते हैं, उन मनुष्यों के नाम मेरे हृदय में सदा वर्तमान रहते हैं। जिस किसी भी तरह केवल नाममात्र का जप करने वाले बिना ही श्रम के बड़े आदर के साथ परमधाम को चले जाते हैं। संसार में ऐसा कोई मन-वचन-कर्म जीवित पाप नहीं जो कलिकाल में मेरे नाम कीर्तन से नष्ट न हो जाए—श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति ममजन्तव। तेषा नाम सदापार्थं वर्तते हृदये मम॥ येन-केन प्रकारेण नाममात्रस्य जल्पका। श्रम विनैव गच्छन्ति परे धाम्नि समादरम् रात्॥ तन्नास्ति कर्मज लोके वाग्ज मानसमेव वा। य नक्षय्यते पाप कलौ गोविन्द कीर्तनम्॥" ब्रह्माण्ड पुराण उत्तरखण्ड, हयग्रीवागस्त्य-संवाद के तृतीयाध्याय व 16वें श्लोक में उद्घोषित किया गया है कि एक ही नाम में जितने पापों के विनाश करने की शक्ति सन्निहित है उतने पाप चतुर्दश भुवनों के अन्तर्गत निवास करने वाले समस्त प्राणी मिल कर भी नहीं कर सकते—अहो T नाम्नो या शक्ति पातकाना निवर्तने। तन्निवर्त्यमघं कर्तुं नाल लोकाश्चतुर्दश॥ विष्णुपुराण में भगवान केशव के नाम जप से कलियुग में होने वाले पुण्य फल का इन शब्दों में वर्णन किया है—सत्ययुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ द्वारा भजन तथा द्वापर में पूजन करने वाला पुरुष जिस फल को पाता है उसे ही कलियुग में केवल केशव का कीर्तनमात्र करके वह पा लेता है"—ध्यायन् कृते भजन् यज्ञै स्त्रेतायां द्वापरे चंयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम्(वि० पु० 6/2/17) बृहन्नारदीय पुराण में भी इस तथ्य की पुष्टि में कहा गया है कि कलियुग में और कोई भवसागर से पार होने का ऐसा सरलतम उपाय नहीं है, नहीं है नहीं है, केवल भगवान् का नाम लेना, नाम लेना, नाम लेना ही हमारे जीवन का परम ध्येय है—हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा। 34/127॥ स्कन्द पुराण में भी इसी भाव को दुहराया गया है—"कलियुग में ऐसा कोई भी कायिक, वाचिक, मानसिक पाप नहीं है जो भगवान् का नाम लेने से नष्ट न हो। तन्नास्ति कर्मज लोके वाग्ज मानसमेव वा। यन्नु न क्षीय ते पाप कलौ केशव कीर्तनात्॥ पद्म-

पुराण में 'हरे राम हरे कृष्ण' का जाप करने का महत्त्व बताते हुए कहा है—'हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण, ऐसा जो सदा कहते हैं उन्हें कलियुग हानि नहीं पहुंचा सकता—हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति मंगलम्। एवं वदन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः 4/80/2 ॥ वैशम्पायन संहिता में वर्णित किया गया है कि परम दुष्टों के लिए भी विष्णु का नाम कल्याणकारी सिद्ध होता है—"समस्त धर्मों से परित्यक्त और समस्त प्रकार के पापों में मग्न पुरुष भी यदि भगवान् विष्णु के नाम का कीर्तन करता है तो वह निस्सन्देह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है—सर्वधर्मबहिर्भूतः सर्वं पापरतस्तथा। मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ इसी तात्पर्य का सूचक अग्निपुराण का पद मन्त्र है—जिसका आशय है—सर्वधर्मों से रहित पुरुष भी भगवान् के नाममात्र का उच्चारण करने से सुखपूर्वक इस गति को पा लेता है, जिसे धर्मात्मा लोग भी नहीं पाते। सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाम मात्रैकजल्पका। सुखेन या गतिं यान्ति न ता सर्वेऽपि धार्मिका ॥

वामन पुराण में चर्चित किया गया है कि तीर्थाटन, गंगास्नान, वेदाध्ययन तथा अश्वमेधादि यज्ञों के अनुष्ठान का फल हरि के नाम जप से ही प्राप्त हो जाता है—जिस भाग्यशाली मनुष्य की जिह्वा पर 'हरि' इन दो अक्षरों वाले भगवान् का नाम विराजमान रहता है उसके लिए गंगा, गया, सेतुबन्ध, रामेश्वर, काशी एवं पुष्कर तीर्थ का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उसने भगवन्नाम के प्रभाव से ऋग्वेदादि चारों वेदों का अध्ययन कर लिया और अश्वमेधादि विशिष्ट यज्ञों को भी करा लिया—न गंगा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः। अधीतास्तेन येनोक्तं हरि रित्यक्षर द्वयम् ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नरमेधैस्तथैव च। या जिन ते न ये नोक्त हरि रित्यक्षर द्वयम् ॥ विवश होकर भी नाम लेने वाला पातकी सब पापों से छूट जाता है—'जो मनुष्य गिरते पड़ते फिसलते कष्ट भोगते अथवा छींकते समय विवशता से भी ऊंचे स्वर से हरयेनमः कहता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है—पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन्। 'हरये नमः' इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ श्रीमद्भागवत 12/12/46 ॥ जिस प्रकार सिंह के भय से व्याकुल होकर गीदड़ प्राणरक्षार्थ इधर-उधर भागते फिरते हैं, उसी प्रकार पापी मनुष्य भी यदि विवश होकर भगवन्नाम का कीर्तन करता है तो वह तत्काल समस्त पापों से मुक्त हो जाता है—अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः। पुमान विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव (विष्णु पुराण 6/8/19) बृहन्नारदीय पुराण में वर्णित है कि श्री हरि दुष्ट चित्तवान् पुरुषों के द्वारा स्मरण किये जाने पर भी उनके समस्त पापों को हर लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अनिच्छा से स्पर्शित अग्नि भी जला ही डालती है—हरि हंरतिपापानि दुष्ट चित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हिपावकः ॥ बृहन्नारदीय पुराण, 1/11/16॥

शिवपुराण में जप

महादेव जी कहते हैं—वरानने। आज्ञाहीन, क्रियाहीन तथा विधि के पालनार्थ आवश्यक दक्षिणा से हीन जो जप किया जाता है वह सदा निष्फल होता है...

• जो प्रतिदिन संयम से रह कर केवल रात में भोजन करता है और मन्त्र के जितने अक्षर हैं, उतने लाख का चौगुना जप आदरपूर्वक पूरा कर देता है वह 'पौरश्चरणिक' कहलाता है। जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है उसके समान इस लोक में दूसरा कोई नहीं है। उसके समान इस लोक में दूसरा कोई नहीं है। वह सिद्धिदायक सिद्ध हो जाता है।... ...

साधक को चाहिए कि वह शुद्ध देश में स्नान करके सुन्दर आसन बांधकर अपने हृदय में तुम्हारे साथ मुझ शिव का और गुरु का चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्व की ओर मुंह किए मौन भाव से बैठें। चित्त को एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदि के द्वारा पांचों तत्त्वों का शोधन करके मन्त्र का न्यास आदि करे...

मानस जप उत्तम है, उपांशुजप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्न कोटि का माना जाता है ऐसा आगमार्थ विशारद विद्वानों का कथन है। जो ऊंचे-नीचे स्वर से युक्त तथा स्पष्ट एवं अस्पष्ट पदों तथा अक्षरों के साथ मन्त्र का वाणी द्वारा उच्चारण करता है उसका यह जप वाचिक कहलाता है। जिस जप में केवल जिह्वा मात्र हिलती है अथवा बहुत धीमे से स्वर से अक्षरों का उच्चारण होता है तथा जो दूसरों के कान में पड़ने पर भी उन्हें कुछ सुनाई नहीं देता ऐसे जप को उपांशु कहते हैं। जिस जप में अक्षर पंक्ति का, एक वर्ण से दूसरे वर्ण का, एक पद से दूसरे पद का तथा शब्द और अर्थ का मन के द्वारा बारम्बार चिन्तन मात्र होता है वह मानस जप कहलाता है। वाचक एक गुणा ही फल देता है, उपांशु जप सौ गुणा फल देने वाला है बताया जाता है, मानस जप का फल सहस्र गुणा कहा गया है तथा सगर्भ जप उससे सौ गुणा अधिक फल देने वाला है। प्राणायाम-पूर्वक जो जप होता है उसे सगर्भ जप कहते हैं। अगर्भ जप में भी जो आदि और अन्त में प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है। मन्त्रार्थ वेत्ता बुद्धिमान साधक प्राणायाम करते समय चालीस बार मन्त्र का स्मरण कर ले। ऐसा करने में असमर्थ हो तो वह अपनी शक्ति के अनुसार जितना हो सके, उतने ही मन्त्रों का मानसिक जप कर ले। पांच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सगर्भ प्राणायाम करे। इन दोनों में सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है।

सगर्भ की अपेक्षा भी ध्यान सहित जप सहस्र गुणा फल देने वाला कहा जाता है। इन पांच प्रकार के जापों में कोई एक जप अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिए।

घर मे किए हुए जप को समान या एक गुणा समझना चाहिए। गोशाला मे उसका फल सौ गुणा हो जाता है। पवित्र वन या उद्यान मे किए हुए जप का फल एक सहस्र गुणा बताया जाता है। पवित्र पर्वत पर दस सहस्र गुणा बताया जाता है। नदी के तट पर लाख गुणा, देवालय मे कोटि गुणा तथा मेरे निकट किए हुए जप को अनन्त गुणा कहा गया है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण तथा गौओ के समीप किया हुआ जप श्रेष्ठ होता है। वशीकरण मे तथा दक्षिणाभिमुख जप अभिचार कर्म मे सफलता प्रदान करने वाला है।

पश्चिमाभिमुख जप को धनदायक जानना चाहिए तथा उत्तराभिमुख शान्तिदायक होता है। सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुष, के समीप उनकी ओर पीठ करके जप नही करना चाहिए, सिर पर पगडी रख कर, कुर्ता पहन कर, नगा होकर, बाल खोल कर, गले मे कपडा लपेट कर, अशुद्ध हाथ लेकर, सम्पूर्ण शरीर से अशुद्ध रह कर तथा विलासपूर्वक कभी जप नही करना चाहिए। जप करते समय क्रोध, मद, छीकना, थूकना, जभाई लेना तथा कुत्तो तथा नीच पुरुषो की ओर देखना वर्जित है। ऐसा होने पर आचमन करे या तुम्हारे साथ मेरा स्मरण करे या ग्रह नक्षत्रो का दर्शन करे या प्राणायाम कर ले।

बिना आसन के बैठकर, सोकर चलते-चलते अथवा खडा होकर जप न करें। गली मे या सडक पर, अपवित्र स्थान मे तथा अधेरे मे भी जप न करें। दोनो पाव फैला कर, कुक्कुट आसन मे बैठकर या खाट पर चढ कर अथवा चिन्ता से व्याकुल होकर जप न करे। यदि शक्ति हो तो इन सब नियमो का पालन करते हुए जप करें तथा अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करें। ''सदाचारी मनुष्य शुद्ध भाव से जप तथा ध्यान करके कल्याण का भागी होता है।''

सदाचार से हीन, पतित और अन्त्यज का उद्धार करने के लिए कलियुग मे पचाक्षर मन्त्र से बढ कर दूसरा कोई उपाय नही है। चलते-फिरते, खडे होते या स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र या पवित्र पुरुष के जप करने पर भी वह मत्र निष्फल नही होता···किसी भी अवस्था म पडा हुआ मनुष्य भी, यदि मुझमें उत्तम भक्ति भाव रखता है, तो उसके लिए यह मत्र निस्सदेह सिद्ध होगा ही किंतु दूसरे के लिए यह सिद्ध नही हो सकता। प्रिये, इस मत्र के लिए लग्न, तिथि, नक्षत्र वार तथा योग आदि का विचार आपेक्षित नही है। यह मत्र कभी सुप्त नही होता, सदा जागृत ही रहता है।

अगुली से जप की गणना करने का फल एक गुणा बताया गया है। रेखा से गणना करना आठ गुणा उत्तम समझना चाहिए। पुत्र जीव (जिया पोता) के बीजो की माला से गणना करने पर जप का दस गुणा फल होता है, शख से सौ गुणा, मूंगा से हजार गुणा, स्फटिक मणि की माला से दस सहस्र गुणा, मोतियो की माला से लाख गुणा, पद्माक्ष से दस लाख गुणा तथा सुवर्ण के बने

हुए मनकों से गणना करने पर कोटि गुणा से अधिक फल बतलाया गया है। कुश की गाठ से तथा रुद्राक्ष से गणना करने पर अनन्त गुणा फल की प्राप्ति होती है।

तीस रुद्राक्ष के दानों से बनाई गई माला जप-कर्म में धन देने वाली होती है। 27 दानों की माला पुष्टि दायिनी तथा 25 दानों की माला मुक्तिदायिनी होती है, 15 रुद्राक्षों की बनी माला अभिचार-कर्म में फलदायक होती है।

जप कर्म में अंगूठे को मोक्षदायक समझना चाहिए तथा तर्जनी को शत्रु नाशक। मध्यमा धन देती है तथा अनामिका शान्ति प्रदान करती है। 108 दानों की माला उत्तमोत्तम मानी गई है। सौ दानों की माला उत्तम तथा 50 दानों की माला मध्यम होती है। चौवन दानों की माला मनोहारिणी एवं श्रेष्ठ कही गई है। इस प्रकार की माला से जप करें। यह जप किसी को दिखाए नहीं।

कनिष्ठिका अंगुली अक्षरणी (जप के फल को क्षरित-नष्ट न करने वाली) मानी गई है। इसीलिए जप कर्म में शुभ है। दूसरी अंगुलियों के साथ अंगुष्ठ द्वारा जप करना चाहिए क्योंकि अंगुष्ठ के बिना किया हुआ जप निष्फल होता है। (इति) (कल्याण का संक्षिप्त शिवपुराणांक वायवीय संहिता)

उत्तर खण्ड

अध्याय—14 (पृ० 511-512)

आनन्दरामायण के अन्तर्गत यात्राकाण्ड के दूसरे सर्ग में वाल्मीकि की सौ करोड़ श्लोकों रामायण का बराबर भाग प्राप्त करने में संघर्षशील ऊर्ध्व लोकवासी देवताओं पातालवासी असुरदानवों तथा भूलोकवासी मानवों से भगवान शिव अन्तिम बचे हुए दो अक्षरों अर्थात् 'राम' की याचना करते हैं तथा उसे प्राप्त कर अपने को धन्य मानते हुए काशी में मुमुक्षुजनों को इस तारक मंत्र के जप का उपदेश देते हैं—द्वयक्षरं यावमानाम महय शेषे ददौ हरिं। उपदिश्याम्यहं काश्यामन्तकाले नृणां श्रुतौ। रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति॥ आनन्दरामायण 2/15-16॥

उपरिलिखित पौराणिक सन्दर्भों का सार है (1) नाम जप की महिमा वर्णनातीत है (2) नाम-जप से कोटि कोटि पापों का नाश होता है (3) विवशतापूर्वक या अज्ञानता वश किया हुआ भी नाम जप अनन्त पातक नाशी है। (4) कलिकाल में नाम-जप ही मोक्ष का अमोघ साधन है। (5) मानस जप सब प्रकार के जपों से श्रेष्ठ है। (6) वेदाध्ययन, यज्ञ, तप, तीर्थाटन, गंगास्नान आदि की महिमा नाम-जप से कहीं कम है। (7) इस काल में हरि, राम, कृष्ण, शिव, नारायण ही प्रसिद्ध तथा प्रचलित ब्रह्मवाचक नाम स्वीकार किए गए थे।

तन्त्रग्रन्थों में नाम-जप—गुरु नानक से पहले प्रायः सभी तन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका था। इन ग्रन्थों में भी नाम-जप की प्रभविष्णुता मुक्तकंठ से स्वीकार की गई है। सात्वत तन्त्र में नाम की महिमा इस प्रकार गाई गई है—

'नाम अन्त करण की शुद्धि करता है, नाम ज्ञान प्रदान करता है, नाम से मोक्ष चाहने वालो को मुक्ति तथा सासारिक पदार्थों की कामना करने वालो को काम्य वस्तुए प्राप्त होती है—सत्वशुद्धिकर नाम नाम ज्ञान प्रद स्मृतम । मुमुक्षूणा मुक्तिप्रद कामिना सर्वकामदम ॥ साधारणतया यह शका की जाती है कि यदि भगवन्नाम में ऐसी पापरोगादि नाशक शक्ति है तो जो व्यक्ति प्रतिदिन अनेको बार भगवन्नामोच्चारण करता है, उसके रोगादि दूर क्यो नही होते । इस शका का समाधान सात्वत तन सप्तमपटल के इन शब्दो मे प्राप्त होता है—"बिना नामापराध के एकमात्र भगवन्नाम-कीर्तन के प्रभाव से मनुष्य ससार के सागर को पार कर सकता है, इसमे सन्देह नही—तस्मान्नामै कमात्रेण तरत्येव भवार्णवम् । पुमानत्र न सदेहो बिना नामापराधत. ॥ इसी तन्त्र म प्रधानतया दस नामापराध गिनाए हैं (1) सज्जनो की निन्दा (2) असत् पुरुषो को नाम माहात्म्य सुनाना (2) शिव और विष्णु मे भेद बुद्धि करना (4) श्रुति की आज्ञा न मानना (5) शास्त्रो की आज्ञा न मानना (6) आचार्यों के वाक्यो मे विश्वास न करना (7) नाम माहात्म्य को अर्थवाद मानना (8) नाम का आश्रय लेकर विहित कर्म-धर्मों का त्याग करना (9) शास्त्र निषिद्ध कर्मों का आचरण करना (10) नाम-जप की अन्य धर्मों से तुलना करना—उक्त दस नामापराध शकर और विष्णु के नाम-जप के सम्बन्ध मे कहे गए हैं—सन्निदाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेद धीर श्रद्धा श्रुति शास्त्रदैशिकगिरा नाम्न्यर्थवादभ्रम । नामास्तीतिनिषिद्ध वृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरै साम्य नामजपे शिवस्य च हरेर्नामाऽपराधा दश ॥ आगे चलकर नामापराध का निराकरण नाम जप से ही बताया गया है, प्रभाववश यदि किसी प्रकार नामापराध हो जाए तो एकमात्र नाम का ही आश्रय लेकर सदा नाम-कीर्तन करे । नामापराध करने वालो के पाप को नाम ही नष्ट करते हैं और वे ही नाम सतत उच्चारण करने से सिद्धिदायक होते है—"जाते नापाराधे तु प्रमादे तु यथचन सदा सकीर्तयेन्नाम तदेकशरणो भवेत् ॥ नामापराधयुक्ताना नामान्येव हरन्त्यधम् अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च ॥" पुराणो के स्वर में स्वर मिलाकर सात्वत तत्र मे कहा गया है कि सत्ययुग आदि मे ध्यान यज्ञ तथा पूजन से जो फल लोगो को प्राप्त होता था वह फल कलिकाल मे कीर्तन करने से मिल जाता है। कीर्तन के लिए देशकाल तथा कर्त्ता का नियम नही है। अत कलि मे भगवान की कीर्ति का कीर्तन करना परम धर्म है। तीनो युगो के शिष्ट लोग कलि की प्रशसा करते हैं क्योंकि इस युग मे कीर्तनमात्र से परमपद की प्राप्ति होती है। सत्ययुग मे न मुक्त हुए जीव कलि में कीर्तनमात्र क प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं। दोष के समुद्र कलिकाल मे नाम सकीर्तन स ही मनुष्य चारो पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं। जिस किसी भाव मे सतत हरि कीर्तन करता हुआ व्यक्ति पाप का त्याग कर सद्गति प्राप्त करता है; फिर जो श्रद्धा से कीर्तन करता है,

उसका तो कहना ही क्या है—ध्यानेनेष्ट्या पूजनेन यत्फलं लभ्यते जनैः। कृतादिषु कलौ सद्वै कीर्तनादिषुलभ्यते ॥ न देशकाल कर्तृणा नियम. कीर्तने स्मृत। तस्मात् कलौ परो धर्मो हरि कीर्तं सुकीर्तनम्। यत कलिं प्रशसन्ति शिष्टास्त्रियुगवर्तिन। यत्र कीर्तनमात्रेण प्राप्नोति परम पदम् ॥ कृतादावपि ये जीवा न मुक्ता निज-धर्मत। तेपि मुक्ति प्रयास्यन्ति कलौ कीर्तनमात्रत। कलेर्दोषसमुद्रस्य गुण एको महान्यत। नाम्ना सकीर्तनेनैव चातुर्वर्ग जनोऽश्नुते ॥··· ··· ·· येनकेनापि भावेन कीर्तयन् सतत हरिम्। हित्वा पापर्गाने यात्तिकिमुत्त श्रद्धयागृणन् ॥ (सात्वत तन्त्र पटल 5/43-50 ॥)

विष्णुयामल तन्त्र मे रुद्र के प्रति श्रीकृष्ण कहते हैं—"जगन्नाथ—इस नाम से जो मेरा कीर्तन करेगे उनके सैकडो अपराध मैं क्षमा कर दूगा, इसमे सदेह नही—जगन्नाथेति नाम्ना मे कीर्तयिष्यन्ति ये नरा। अपराधशत तेषां क्षमिष्ये नात्र सशय ॥ शाण्डिल्यसहिता मे हरि नाम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन इन शब्दो मे किया गया है—"जिस हरि के नाम के प्रभाव से शकर ने हलाहल विष पी लिया और ब्रह्मा का मस्तक काटने के कारण शकर के हाथ स चिपके हुए ब्रह्म सिर का कपाल गल कर छूट गया, उस हरि से श्रेष्ठ कौन है—यस्य नाम्न प्रभावेण पीत हलाहल विषम्। कपाल गलित शम्भो स्तत को न्य परो हरे · ॥ 3/20 ॥

कण्ठ तालु आदि के अभिघात से उत्पन्न होने वाले नाम मे ऐसी शक्ति कहाँ से आएगी जिससे रोगादि का नाश तथा मुक्ति प्राप्त हो, इस प्रश्न का उत्तर शिवरहस्य म यह कह कर दिया गया है कि शिव इन दो अक्षरो को परब्रह्म समझना चाहिए—परब्रह्ममेति विज्ञेय शिव इत्यक्षर द्वयम्। पद्मपुराण मे भी इस भाव की पुष्टि इन शब्दो मे की गई है—"क्योकि नाम और नामी मे अभिन्नता है अत चैतन्य रस विग्रह श्रीकृष्ण जी क समान उनका चिन्तामणि के तुल्य नाम भी पूर्ण शुद्ध नित्य और मुक्त है—नामचिन्तामणि कृष्णचैतन्य रस विग्रह.। पूर्णं शुद्धो नित्यमुक्तो भिन्नत्वान्नामनामिनो ॥

मध्यकाल मे कई साम्प्रदायिक उपनिषदो का प्रादुर्भाव हुआ। प्राय इन सभी म अपने अपने आराध्य क नाम-जप के माहात्म्य का वर्णन प्राप्त होता है। परवर्ती उपनिषदो मे से कुछ उदाहरण यहा प्रस्तुत किए जा रहे हैं। रामपूर्वता-पिन्युपनिषद् मे कहा है—"योगी लोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मा मे राम-माण होते हैं, उसी का राम पद से बोध होता है। उसी को परब्रह्म कहते हैं—रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्देचिदात्मनि। इति रामपदेनासौ पर ब्रह्माभि-धीयते ॥ 1/6 ॥ इसी उपनिषद् मे आगे चलकर बताया गया है कि यह मन्त्र राम का वाचक है और रामवाच्य है। इन दोनो का जो योग है वह सब प्रकार के साधको को फल देने वाला है, इसमे कोई सन्देह नही—मन्त्रोऽय वाचको रामो वाच्य स्याद्योग एतयो। फलदश्चैव सर्वेषा साधकाना न सशय ॥ 4/2 ॥ कलि-

सतरणोपनिषद मे हरे राम आदि सोलह नामो के मन्त्र का गुणानुवाद नारद-ब्रह्मा सवाद के रूप मे इस प्रकार किया गया है—' द्वापर के अन्त मे नारद जी ब्रह्माजी के पास गए और बोले—भगवन्! मैं भूलोक मे पर्यटन करता हुआ किसी प्रकार कलि से त्राण पा सकता हू?" ब्रह्माजी बोले, "· समस्त श्रुतियो का जो गोपनीय रहस्य है उसे सुनो, जिससे कलियुग मे भवसागर पार कर लोगे। भगवान आदि पुरुष नारायण के नामोच्चारणमात्र से मनुष्य कलि के दोषो का नाश कर डालता है।" नारद जी ने फिर पूछा—वह कौन सा नाम है? हिरण्यगर्भब्रह्मा जी ने कहा, ' हरे राम हरे राम हरे राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। ये सोलह नाम कलि के पापो का नाश करने वाले हैं' 'फिर नारद जी ने पूछा भगवन्! इसके जप की क्या विधि है?" ब्रह्मा जी ने उनस कहा, "इसकी कोई विधि नही है। पवित्र हो या अपवित्र—इस मत्र का निरन्तर जप करने वाला सालोक्य सामीप्य सारूप्य और सायुज्य—चारो प्रकार की मुक्ति प्राप्त करता है। जब साधक इस सोलह नामो वाले मत्र के साढ़े तीन करोड जप कर लेता है तो वह ब्रह्महत्या के पाप को पार कर जाता है" सब धर्मों के परित्याग के पाप स तत्काल ही पवित्र हो जाता है—द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माधाम जगाम कथ भगवन् मा पर्यटन कलि सतरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा ' सर्वश्रुतिरहस्य गोप्य तच्छृणु येन कलि ससार तरिष्यसि। भगवत आदि पुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारद पुन पप्रच्छ तन्नामकिमिति। सहोवाच हिरण्यगर्भ। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ इति षोडशक नाम्ना कलि कल्मषनाशनम्।" पुनर्नारद. पप्रच्छ भगवन् को स्यविधिरिति। त होवाचनास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिर-शुचिर्वा पठन्ब्रह्मण सलोकता समीपता सरूपता सायुज्यतामेति। यदास्य षोडष-कस्य साधत्रिकोटीर्जपति तदा ब्रह्महत्या तरति ·····सर्वधर्म परित्यागपापात्सद्य शुचितामाप्नुयात्···इति, श्री कलिसतरणोपनिषत्समाप्ता॥

आयुर्वेद मे भी भगवन्नाम-मन्त्रादि की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। चरक सहिता म विषमज्वर से मुक्ति पाने क लिए देवी देवताओ की पूजा तथा विष्णुसहस्र नाम के पाठ का वर्णन प्राप्त होता है। "भगवती उमा नन्दी आदि अनुचरों तथा मातृकाओ के साथ भगवन् शकर का इन्द्रिय निग्रहपूर्वक पूजन करने वाला शीघ्र ही विषम ज्वर से मुक्त हो जाता है। सहस्रों मस्तक वाले चराचर रूप सर्वव्यापक भगवान् विष्णु को उनक सहस्र नाम द्वारा स्तुति करने वाला सब प्रकार के ज्वरो को दूर भगा देता है 'जप होम तथा दान से, वेद-पाठ के श्रवण से एव सतों के दर्शन से भी मनुष्य अविलम्ब ज्वर से सर्वथा मुक्त हो जाता है—सोम सानुचर देवं समातृगण मीश्वरम्। पूजयन् प्रयत शीघ्र मुक्तते विषमज्वरात् विष्णु सहस्र मूर्धान चराचरपति विभुम्। स्तवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान्

व्यपोहति ।।''''''जपहोम प्रदानेन वेदाना श्रवणेन च । ज्वरात् विमुच्यते शीघ्रं साधूना दर्शनेन च (चिकित्सा स्था० 3/196-7,200)। योगरत्नाकर में भी कहा गया है कि भगवान् विष्णु के सहस्र नामो का पाठ तथा उपनिषदो का श्रवण ज्वरनाश मे सहायक होते हैं—विष्णोर्नामसहस्रस्य पठत श्रवण श्रुतेः (ज्वर चिकित्सः) वाग्भट ने भी कुष्ट रोग को निर्मूल करने के लिए शंकर भगवान् गणेश जी, भगवती तारा एवं भगवान् सूर्य की आराधना को प्रभावशाली माना है। (वाग्भट चि० 19 अ०)

इसके अतिरिक्त पुराणो विशेषतया लिंग पुराण मे तथा तन्त्र में जप के लिए उपयुक्त स्थान आसन मालादि का वर्णन भी किया गया है। उपांशु मानस आदि जप के समान स्थान के तारतम्य से भी जप के फल वैचित्र्य देखा जाता है। लिंग पुराण का इस सम्बन्ध में कथन है कि घर मे किया गया जप जपसख्या के तुल्य ही फल प्रदान करता है। गोशाला में किए जाने पर जप का फल लाख गुना तथा भगवान् शिव के सामने किया गया जप तो अनन्त फलदायक होता है। समुद्र तट पर, देवह्रद पर, पर्वत शिखर पर देवालयो मे, पवित्र आश्रमो मे जपसख्या करोड गुना अधिक बढ जाती है। भगवान् शिव के सामने ध्रुवतारा सूर्य की ओर मुह करके जपने से तथा जल, दीपक, अग्नि, गौ तथा गुरु के सामने जप करने से भी जप कर्म प्रशस्त हो जाता है—गृहे जप सम विद्याद् गोष्ठे शतगुण भवेत्। नद्यां शतसहस्र तु अनन्त शिव सन्निधौ ।। समुद्र तीरे देव ह्रदे गिरौ देवालयेषु च। पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जप कोटिगुणो भवेत् ।। शिवस्य सन्निधाने च सूर्यस्याग्रे गुरोरपि। दीपस्य गोर्जलस्यापि जपकर्म प्रशस्यते ।। (लिंग पुराण 85/196-8 ।।) लगभग ऐसा ही मत तत्रसार, शारदातिलक, हरिभक्ति विलास, पूजापकज भास्कर तन्त्र-सार, मन्त्रमहार्णव, गायत्रीपुरश्चरण पद्धति तथा वृद्धहारीत, विश्वामित्र, बृहत्पाराशर आदि स्मृतियो मे व्यक्त किया गया है। इस विषय में योगिनी हृदय तन्त्रसार (पृ० 28 चौखम्बा सस्करण) शारदातिलक (2/138-139) तथा देवीभागवत (11/21/2-3) के कथन भी द्रष्टव्य है जिनमे तुलसीकुञ्ज बिल्व वृक्ष अश्वत्थमूल, तथा आवलामूल आदि को भी जप के लिए विशेष सिद्धिप्रद माना है।

जप के लिए आसनो के सबध मे रुद्रयामल तन्त्र मे कहा गया है कि कम्बल कृष्णाजिन व्याघ्रचर्म, वस्त्रासन, पाषाणासन तृणासन तथा पल्लवासन उपयुक्त है। इनमे से कुश मृगचर्म तथा लाल कम्बल का विशेष महत्त्व है। क्योकि कृष्णाजिन तथा व्याघ्र चर्म के आसनो पर जप करने से ज्ञान, सिद्धि, मोक्ष तथा श्री की प्राप्ति होती है और कुशासन से मन्त्र की सिद्धि होती है। अन्य प्रकार के आसन निषिद्ध है—कृष्णाजिनेज्ञानसिद्धिर्मोक्ष श्री व्याघ्र चर्मणि कुशासने मन्त्र-सिद्धिर्नात्र कार्यं विचारणा ।। तथा श्रेष्ठ च रक्त कम्बलम् ।। (रुद्रयामल,

तन्त्रसार) ।

स्थान के समान माला भी जप परिणाम के तारतम्य में वृद्धि [illegible] सहायक मानी गई है। इस विषय में कहा गया है—"अंगुलियों पर [illegible] गुना, पर्व पर जपने से आठ गुना, पुत्र जीव की माला जपने से दस गुना [illegible], मणियों, रत्नों, स्फटिक, मोतियों, पद्माक्ष सुवर्ण, कुश ग्रंथि, रुद्राक्ष की [illegible] से जप करने पर क्रमशः जप सौ गुना, सहस्र गुना, दस सहस्र गुना, लाख गुना, दस लाख गुना करोड़ गुना, अरब गुना तथा अनन्त गुना हो जाता है—

अंगुली गणना दे च अर्वणाष्टगुण भवेत् ।
पुत्र जीवदशगुण शत शर्वं सहस्रकम् ॥
पनालैमणिरत्नैश्च दशसाहस्र [illegible] ।
तदैव स्फटिकं प्रोक्त मौक्तिकैर्ल [illegible] ॥
पद्माक्षैर्दशलक्ष स्यात् सौवर्णे कोटि [illegible] ।
कुशग्रन्थ्या कोटिशत रुद्राक्षै स्यादनन्तकम् ॥

(तन्त्रसार, [illegible] [illegible])

इसी प्रकार वैष्णव मन्त्रों में तुलसीमाला, गणेश [illegible] दांत की माला तथा त्रिपुर सुन्दरी के जप में रक्त [illegible] विशेष फलदायक मानी गई है—वैष्णवे तुलसीमाला [illegible] । त्रिपुराया- जपे शस्ता रुद्राक्षै रक्तचन्दनै ॥ तन्त्रसार ॥

अग्नि पुराण में कामनाभेद से भी मालाभेद का [illegible] है—"भुक्ति के लिए हेम और रत्न से युक्तमाला मारण में [illegible] आप्यायन में शंख सूत्र की माला पुत्र के लिए मोतियां में [illegible] है। कुशा से विनिर्मित माला मुक्ति देने वाली स्फटिक से [illegible] (वैभव) देने वाला रुद्रतनुज (रुद्राक्ष) मुक्ति प्रद होती है।—[illegible] मारणे । आप्यायन शंखसूत्र मौक्तिक पुत्रवर्द्धनम् ॥ [illegible] नेत्रज । ॥ 327/2—3 ॥ कालिका पुराण में भी [illegible] की माला को सर्वपापनाशक, पुत्रजीव की माला को पुत्र [illegible] मणियों की माला को सर्वाभीष्ट-दायक तथा मूंगे की माला को विपुलधनदायक माना है।—[illegible] मयी माला सर्वपापप्रणाशिनी। पुत्रजीवफलैः तृप्ता [illegible] ॥ निर्मिता रौप्य मणिभिजपमाला लेप्सितप्रदा। प्रवालैर्विहित [illegible] विपुलं धनम् ॥ लिंग-पुराण में भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर मुख करके जप से क्या क्या फल होते हैं— यह वर्णित भी किया गया है— पूर्व की ओर जप करने से वशीकरण की सिद्धि होती है। अभिचार कृत्यों में दक्षिण की ओर मुख करके बैठना चाहिए। धन प्राप्ति के लिए पश्चिम की ओर मुख करना चाहिए तथा शान्तिकृत्यों के लिए उत्तर दिशा उपयुक्त है तत्पूर्वाभिमुख [illegible] दक्षिणं चाभिचारके पश्चिम

धनद विद्यादुत्तर शान्तिक भवेत् (85/113)

तन्त्रसार गौतमी तन्त्र और लिंगपुराण मे कामना भेद से माला पर भिन्न-भिन्न अंगुलियो के प्रयोग का भी विधान निर्दिष्ट है। लिंगपुराण का उदाहरण द्रष्टव्य है—"नामजप मे अंगूठा मोक्षदायक, तर्जनी शत्रुनाशक मध्यमा धनदायक तथा अनामिका शान्तिप्रद मानी गई है। कनिष्ठिका का प्रयोग जपकर्म मे निषिद्ध है। अंगूठे के बिना कोई भी सत्कर्म अपूर्ण माना गया है अत. अंगूठे तथा किसी अन्य अंगुली के संयोग से कामनानुसार जप करना चाहिए—अंगुष्ठ मोक्षद विद्यातर्जनी शत्रुनाशनी। मध्यमा धनदा शान्ति करोत्येषा ह्यनामिका॥ कनिष्ठा रक्षणीया सा जपकर्मणि शोभने। अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभि सह॥ अंगुष्ठेन बिना कर्म कृत तदफल यतः (82/114-116)

तन्त्रसार मे शिखा खोल कर जपना, पगडी या कुर्ता पहन कर जपना, पैर फैला कर नंगा होकर जपना, व्यग्रचित्त तथा क्रुद्ध होकर जपना जूता आदि पहन कर जपना निषिद्ध माना है—उष्णीषी कंचुकी नग्नोमुक्तकेशो गणावृतः। अपवित्र करो शुद्ध उपानद गूढ पादो वा पानशय्यागतास्तथा। प्रसार्य न जयेत् पादौ॥ किन्तु मानस-जप के लिए किसी भी विधि विधान का बंधन नही है। शुद्ध अशुद्ध जाते, आते, सोते, किसी भी अवस्था मे मन से मन्त्रो का जप किया जा सकता है। मानस-रूप सर्वदेश और सर्वकाल मे हो सकता है और वह जप-निष्ट द्विज समस्त यज्ञफल को प्राप्त करता है—मानसे तु नियमो नास्ति। अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छस्तिष्ठन स्वयन्नपि। मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसत्॥ न दोषो मानसे जापे सर्वदेशोऽपि सर्वदा। जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठो खिल यज्ञफल लभेत्॥ तन्त्रसार॥

उपरिलिखित तथ्यो से स्पष्ट हो चुका है कि गुरु नानक से पूर्व संस्कृत साहित्य मे नाम-जप की एक अक्षुण्ण परंपरा विद्यमान थी। निश्चय ही नाम-जप की महिमा जनमन मे पूर्णरूपेण अधिष्ठित थी। इसके अतिरिक्त बौद्धो, जैनियो तथा अन्य धर्मावलम्बियो मे भी इस प्रथा का पर्याप्त प्रचलन था। तिब्बत, नेपाल आदि मे बौद्धधर्मानुयायी 'ओम् मणि पद्मे हुं' की या बुद्ध अथवा बोधिसत्वो के अन्य नामो की माला चरखियो आदि पर जपते हैं। जैनधर्म मे भी भक्तामरस्तोत, विषापहार कल्याण मंदिर आदि अनेक प्रार्थनास्तोत है, जिनमे तथा अन्य अनेक ग्रन्थो मे भगवान् की प्रार्थना या उनके स्मरण से ही पापो के नष्ट हो जाने एव सकट दूर हो जाने का वर्णन है। जैनधर्म का सर्वोपरि मत्रराज नमस्कार मत्र और पच-परमेष्ठी का नामरूप ही है। पारसियो के धर्मग्रन्थ जेन्द-अवेस्ता मे वर्णित है कि मेरा (प्रभु का) नाम परम-पवित्र है और परम महिमाशाली है (ओमंज्द यास्त) यहूदियो के धर्म ग्रन्थ मे लिखा है "तू प्रभु से प्रार्थना कर और वह तेरी सुनेगा (जोब 22/27), सब चेतन और अचेतन सृष्टि को प्रभु के नाम की प्रशसा

करनी चाहिए क्योंकि उसका नाम ही सबसे उत्तम है(भामज 148/13)ईसाइयो की धर्मपुस्तक बाइबल के न्यू टेस्टेमेन्ट मे कहा है—"इसलिए मैं तुमसे कहता हू कि जब तुम प्रार्थना करते हो तब तुम जिन चीजों को चाहते हो विश्वास करो कि तुम उनको पाओगे (मार्क 11/24) मुसलमानो के धर्मग्रन्थ कुरान मे भी नाम महिमा का गान है—"परमात्मा के महान् नाम को गाओ (56/96) परमात्मा का नाम बोलो और उसकी भक्ति पूर्णत करो(73/9)।

इस सन्दर्भ मे गुरु नानक के पूर्ववर्ती तथा समकालीन सन्तो तथा महात्माओ के अपनी प्रादेशिक भाषाओ मे नाम-जप सम्बन्धी विचार भी उल्लेखनीय हैं।

तमिल के आलवार भक्तों में नाम-जप

भगवान् द्वारा स्वप्न मे प्रदत्त आदेशानुसार आलवार भक्त विष्णुचित्त (पेरि आलवार 7 शती ई०) ने मथुरा मे पहुचकर विभिन्न सम्प्रदायो के समस्त प्रतिनिधियो को शास्त्रार्थ मे पराजित किया। तत्पश्चात् उन्होने वहा के राजा बलदेव की समस्त शकाओ का समाधान करते हुए यह प्रतिपादित किया कि—"वस्तुत भगवान् नारायण ही सर्वोपरि हैं और उनके चरण कमल मे अपने आपको समर्पित कर देना ही कल्याण का एक मात्र उपाय है" उन पर विश्वास रखो, उनकी आराधना करो, उनके नाम की रट लगाओ और उनका गुणानुवाद करो। "ओम् नमो नारायणाय।" (साधना के सोपान— दुर्गाशकर मिश्र, पृ० 359)

तमिल प्रदेश के प्रथम तीन आलवारो को समसामयिक समझा जाता है। उनका समय प्राय ईसा की दूसरी शती माना जाता है। भारी वृष्टि मे त्राण पाने के लिए तमिस्त्राप्लावित रात्रि मे एक कुटिया मे एकत्रित खडे इनको साक्षात् विष्णु भगवान् के दर्शन प्राप्त हुए। भगवान् का वरदान् मिलने पर इन्होने उसी समय 100, 100 पद रच डाले जिन्हें ज्ञानपदीय कहा जाता है। इन पदो मे सर्वत्र ही इस प्रकार की चिन्तनशीलता दृष्टिगोचर होती है—"भगवान् के सदृश अन्य कोई वस्तु सृष्टि मे नही है। समस्त रूप उसके हैं "वे एक होते हुए भी अनेक बने हुए हैं। उन्ही का नामोच्चारण करना चाहिए" वे ही ज्ञान हैं, ज्ञेय हैं और ज्ञान के द्वार भी हैं"।" (साधना के सोपान कृतिकार दुर्गाशकर मिश्र पृ० 353)।

गोरखनाथ ने नाम-जप का महत्व अजपाजाप के रूप मे प्रकट किया है। उन्होने अजपाजाप को आत्मचिन्तन के लिए विशेष आवश्यक समझा है। अजपाजाप वह जाप है जो बिना जपे ही होता है अर्थात् जिसमे जिह्वा की आवश्यकता नही पडती तथा शरीर के रोम-रोम मे वह जाप स्वाभाविक रूप से सास के आवागमन के समान होता रहता है। रात दिन मनुष्य के इक्कीस सहस्र छह सौ श्वास चलते हैं और इनमे से प्रत्येक श्वास मे अद्वैत भावना रखना ही अजपा-

जाप है। अभिप्राय यह कि बिना ब्रह्म भावना के एक भी श्वास व्यर्थ न जाए। गोरखनाथ कहते है—"इस प्रकार मन लगाकर जाप करना चाहिए कि सोहं सोहं का उपयोग वाणी के बिना भी हो सके और दृढ आसन पर बैठकर ध्यान करना तथा रात दिन ब्रह्मज्ञान का चिंतन आवश्यक है।"

ऐसा जाप जपो मन लाई। सोहं अजपा जाई। आसन दिढ करि धरो धियाना। अहूनिसि सुमरो ब्रह्म गियाना॥ नासा अग्रनिज्यो वाई। इडा प्यगुला मधि समाई॥ घासे सहस इक्कीसौ जाप। अन हद उपजे आपे आप॥ (साहित्य साधना के सोपान—दुर्गाशंकर मिश्र, पृ॰ 118, 119) श्री ज्ञानेश्वर महाराज (जन्म 1275 ई॰ मृत्यु ई॰ 1296) नाम की महिमा इन शब्दों मे व्यक्त करते हैं "प्रजापति जब सृष्टि रचते है तो नाम की आवृत्ति किया करते हैं और तभी सृष्टि रचना म समर्थ होते हैं। जिन भगवान् स ब्रह्मा उत्पन्न हुए उन भगवान को ब्रह्मा ने नही पहचाना और सृष्टि रचने चले पर जब सृष्टि रच नही सके तब उन्होने नाम लिया और नाम लेने से सृष्टि रचने म समर्थ हुए। (ज्ञानेश्वरी अ॰ 17/335 337) यह नाम कहा मे उत्पन्न हुआ ? उसका आश्रय क्या है ? इन प्रश्नो का उत्तर देते हुए श्री ज्ञानेश्वर बताते हैं—'आकाश को जैसे आकाश की ही आश्रय है वैस ही इस नाम को नामी का अभेद आश्रय है। आकाश मे उदय होने वाले सूर्य ही जैसे सूर्य को प्रकाशित करते है वैसे ही भगवान् ही अपना नाम व्यक्त करते हैं (ज्ञानेश्वरी अ॰ 17/403, 404) नामजप के लाभ श्री ज्ञानेश्वर इस प्रकार वर्णित करते है—'नाम कीर्तन से पापो के प्रायश्चित बतलाने का व्यवसाय ही नष्ट हो जाता है। क्योकि नाम संकीर्तन लेशमात्र भी पाप रहने नही देता। यम दमादि इसके सामने फीके पड जाते हैं तीर्थ अपने स्थान छोड जाते हैं यमलोक का मार्ग ही बन्द हो जाता है। यम कहत हैं हम किसको यातना दें, हम कहते है हम किसका दमन करें तीर्थ कहते हैं, हम क्या भक्षण करें, यहा तो दवा के लिए भी पाप-ताप नही रह गया। वैकुण्ठ लोक मे तो विरला ही कोई आ सकता है पर इस नाम संकीर्तन से उन भगवत्भक्ता ने सारे विश्व को ही वैकुण्ठ बना डाला है। सहस्रो जन्म कोई तपस्या करे, तब वह भगवान् का नाम लेने मे समर्थ होता है (ज्ञानेश्वरी अ॰ 9/197 210) इस सम्बन्ध म ज्ञानेश्वर उच्चस्वर से उदघोषित करते हैं—'नामोच्चार क द्वारा अखिल ससार को हम सुखमय करेंगे, तीन लोक आनन्द स भर देंगे।" उन्होने नामस्मरण को ही ससार सागर से पार ले जाने वाली तरणी माना है नामाचा सहस्र बर हो। नावाइया अवधारि। सज्जूनि सवेसारि। तारू जाला॥ ज्ञान॰ 12/91॥

भक्त नामदेव (जन्म 1270 ई॰ मृत्यु 1350 ई॰) का नाम जप प्रेम भी वर्णनीय है। वे कहते हैं—"जो नारायण का भजन नही करते मैं उनको देखना भी नही चाहता—जे न भजति नारायणा। तिनका मैं न करौं दरसणा॥ भगवान्

की लीला अगाध समुद्र हैं, उसकी गति कोई नही देख सकता। ग्रहण के योग्य तो प्रभु का नाम है, उसे ही भजिए—तत्त गहन कौं नाम है, भजि लीजै सोई। लीला सिंध अगाध है, राति लखै न कोई॥ सोने के पहाड और घोडो का दान तथा कोटि गौओ का दान नाम के समान नही। ऐसा नाम अपनी जीभ पर रखो, जिससे जरा और मृत्यु पुन न हो—कचन मेरु सुमेरु, हयगज दीजै दाना। कोटि राऊ जो दान दे, नहि नाम समाना॥ एकै मन एकै दसा एकै व्रत करिये। नामदेव नाम जहाज है, भवसागर तरिये॥

आविर्भावकाल सं० 1356

अप्रतिम व्यक्तित्वशाली रामानन्द उत्तर भारत मे भक्ति आन्दोलन के सस्थापक माने जाते हैं। नाम महिमा के विषय मे वे कहते हैं कि राम के स्मरण बिना मनुष्य जीवन निरर्थक है। मूरख तन धरि कहा कमायो, राम भजन बिनु जनम गमायो॰॰॰॰॰॰मेरी मेरी करतो फिरियो, हरि सुमिरण तो कबू न करियो। नारी सेति नेह लगायो, कब हिरदै राम नहि आयो॥' ॰॰॰॰स्वारथ माहि चहूँ दिसि ध्यायो, गोविन्द को गुन कबहूँ न गायो (रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा सवत् 2012, ज्ञानलील पृ० 6)

असम के प्रसिद्ध श्री महापुरुषिआ सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा श्री शकरदेव (जन्म 1449 ई०) द्वारा रचित 'नाम महिमा' मे कहा गया है, "जहा नाम है वहा ही परम पुण्य देने वाला तीर्थ क्षेत्र है, नाम ही परम देव है, नाम ही परम तप है, नाम ही परम क्रिया है, नाम ही परम धर्म है और नाम ही अर्थ कहा गया है' 'नाम ही परम भक्ति है नाम ही परम गति है नाम ही परम जप के योग्य है नाम ही उत्तम प्राप्य है' वैष्णवो का धन नाम है अत नाम का सदा स्मरण कर —यतो नामैव परम तीर्थ क्षेत्र च पुण्यदम् नामव परमो देवो नामैव परम तप॥ नामैव परम दान नामैव परमाक्रिया। नामैव परमो धर्मो नामैवार्थ प्रकीर्तित॥ '' नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमागति। नामैव परम जाप्य प्राप्यमुत्तमम्॥''' वैष्णवाना धन नाम तस्मान्नाम सदा स्मर॥

श्री शकर देव के शिष्य सत श्रीमाधव देव अपनी 'नाम महिमा' सम्बन्धी कविता मे कहते है, "राम कृष्ण कृष्ण राम हरि हरि—इन नामो मे ही अविराम रमण करो। राम नाम तथा हरि हरि कहना ही अनुपम धर्म है। पहले भक्त की मनोकामना राम नाम ही है। कलियुग मे राम नाम मे ही सार है, राम नाम के बिना और कुछ नही है।'''राम नाम का प्रति क्षण जाप कर—राम कृष्ण राम कृष्ण राम हरि हरि। राम ते रमो हो अविराम राम राम॥ राम नाम धर्म अनुपाम हरि हरि। पुरे भकतर मन काम राम राम॥ कलियुगे रामनामे सार हरि हरि। रामनाम विने नहि आर राम राम॰॰॰॰॰॰जप राम नाम अनुक्षण राम राम॥

गुजरात के भक्त नरसी मेहता (जन्म ई० 1431) को भगवन्नाम कीर्तन एव भजनानन्दी महात्मा प्राणो से प्रिय थे, वे स्वयं को भगवन्नाम का व्यापार कहते थे—सनो अमे रे वेपारिया श्रीराम नामना। वेपारी आवे छे वेधा गामगामना। एक स्थान पर वे कहते हैं, "श्री भगवान् का नाम यदि प्रत्येक श्वास मे आता रहे तो मन मे काम उत्पन्न न हो—श्वासोश्वासे समरे श्रीहरि मन न व्यापे कामरे। आगे चल कर वे कहते हैं, "इस कठिन कलियुग मे श्रीहरि के नाम का स्मरण करो। इसमे पैसा लगता नहीं और सारा कार्य पूर्ण हो जाता है। श्यामसुन्दर तो सदा अपने भक्त के अधीन हैं। वे तुम्हारे सारे कार्य सिद्ध कर देंगे—हरि हरि रटण कर, कठण कलिकाल मां दाम पैसे नही, काम सरसे। भक्त आधीन के श्यामसुन्दर सदा, ते तारां कारज सिद्ध करशे। तुलसी की भाँति नरसी भी स्पष्ट तथा निर्विवाद रूप से उदघोषित करते हैं कि जो नारायण का नाम नही लेते उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। मनसा वाचा कर्मणा लक्ष्मी वर को भजना चाहिए। नारायण का नाम न लेने वाले कुल कुटुम्ब मा-बाप भगिनी सुत दारा को *ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे साप कचुकी को त्याग देता है—नारायणनु नाम न* लेता यार तेने तजिये रे। मनसा वाचा कर्मणा करीने लक्ष्मीवर ने भजिये रे। कुमने तजिये, कुटुम्ब ने तजिये, तजिये माने बाप रे। भगिनी सुत दाराने तजिये, जेम तजे कचुकी साप रे। श्री नरसी अपने उपदेशो मे प्राय नाम-जप के लिए आग्रह और अनुरोध करते हुए बलपूर्वक कहते हैं—"यह अवसर फिर नहीं आने वाला है। और कृष्ण कहो, कृष्ण का नाम लेते रहो, कृष्ण कहने का यही सुअवसर है। कृष्ण कहो, कृष्ण कहो—आ अवसर छे केवानु।"

कबीर (जन्म ई० 1398 मृत्यु ई० 1494) ने राम-नाम की तुलना भिन्न-भिन्न पदार्थों से की है। उनके अनुसार राम-नाम पारस मणि है जिसके छूने से मन रूपी मलिन लोहा सोना बन जाता है, मोह बन्धन छूट जाता है, नाम एक ऐसा रत्न है कि उसे गाठ बाध कर रखना चाहिए, कभी खोलना नही चाहिए"'। '''राम नाम अनुपम है रसायन है जिसकी एक बूद भी यदि शरीर मे जाए तो सारा शरीर कचन हो जाता है—आदि नाम अ है मन है मैला लोह। परसत ही कचन भया छूटा बन्धन मोह। राम नाम धन पाइकै गाठी बाध न खोल।''' सभी रसायन हम करी नहि नाम सम कोय रचक घट मे सचरे सब तन कचन होय। (कबीर वचनावली, पृ० 97, 98) कबीर पुन कहते हैं कि राम नाम अमृत है, इस अमृत को छोडकर विष क्यों खाया जाए, "राम नाम छाडि अमृत काहे विष खाइ (सत काव्य, पृ० 191) अन्त मे कबीर अपना मतव्य इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, "हे भाई राम नाम स्मरण करो, राम नाम के बिन भवसागर मे नर अधिकाधिक डूबते हैं"—(कबीर वचनावली, पृ० 320)।

महात्मा कबीरदास जी के पुत्र सत कमाल भी राम-नाम स्मरण को तीर्थव्रतादि

से अधिक शक्तिशाली अमोघ मत्र मान कर कहते है—राम सुमिरो, राम सुमिरो, राम सुमिरो भाई।···देस विदेस तीरथ—वरत मे, कछु नही काम बैठे जगा सुख से ध्याओ, अखिन राजा राम। कहे कमाल इतना वचन, पुरानो का सार·· ।

सत रैदास (जन्म 1428 ई०) के मतानुसार जगत् म और सब कुछ त्याग कर हरि नाम जपना चाहिए क्योकि जिसके पास हरि नाम है उसके करतल मे सुख सागर सुरु, तरु चिन्तमणि, कामधेनु चारो पदार्थ अष्ट सिद्धिया तथा नव-निधिया हैं—सुख सागर सुरतरु, चिन्तामणि, कामधेनु बसि जाके। चारि पदारथ असट दसनिधि, नवनिधि करतल ताके (सन्त काव्य, पृ० 222)।

श्रीकृष्ण चैतन्य देव और नाम साधना—महाप्रभु श्री चैतन्य ही इस तथ्य का सूचक है कि वे जगत मे हरिनाम के साथ आविर्भूत हुए। 1407 शताब्द (1475 ई०) फाल्गुन मास, पूर्णिमा का सध्याकाल और चन्द्रग्रहण का समय था इनके अवतरण का। जाह्नवी तटवर्ती नवद्वीपधाम मे सहस्रो लोग चन्द्रग्रहण के अवसर पर शुद्धि की कामना से हरिनाम लेते हुए गगा स्नान करने जा रहे थे। लक्षणो के देखते हुए पण्डितो ने गणना करके बतलाया कि जिसने जन्म लेते समय श्री हरिनाम-कीर्तन कराया है, अवश्य ही वह अतुलनीय नाम प्रचारक होगा।

श्री रूपगोस्वमी ने महाप्रभु का जिस रूप मे दर्शन किया था तथा जिस रूप मे वे उनका दर्शन करने के इच्छुक थे उसका चित्रण निम्नलिखित पक्तियो मे द्रष्टव्य है—"श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वदा नाम उच्चारण करते रहते थे। वे कटिसूत्र मे ग्रन्थि द्वारा नाम गणना करते थे। उनके विशालनेत्र थे तथा आजानुलम्बित भुजाए थी। उनको क्या फिर इसी रूप म देख पाऊगा।"

(हरे कृष्णेत्युच्चै स्फुरितरसनो नाम गणना
कृतग्रन्थि श्रेणी सुभग कटि सूत्रोज्ज्वल कर।
विशालक्षो दीर्घार्गलयुगल खेलाचित भुज।
स चैतन्य कि मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्॥
(श्री चैतन्याष्टक)

प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा कि उनकी भावविह्वल अवस्था का क्या कारण है। उत्तर मे महाप्रभु ने कहा, 'मेरे गुरुदेव ने मुझ को नाम का यह उपदेश किया है—हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ मैं इस वचन पर विश्वास करके नाम उच्चारण करता हू। नाम का प्रभाव मुझ को व्याकुल कर देता है। मैं अपनी इच्छा से नही नाचता-गाता। नाम ही मुझको हसाता, रुलाता और बेसुध करता है।"

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती अपने ग्रन्थ श्री चैतन्यचरितामृत मे कहते हैं कि कर्मी योग, ज्ञानी, ध्यानी कोई भी जिसे प्राप्त नहीं कर सकते, यहा तक कि जिस भेद को गोविन्द का भजन करने वाले भी नही प्राप्त कर पाते उसको श्री गौराङ्ग-

प्रभु न अवतीर्ण होकर नाम के द्वारा ही प्रकाशित कर दिया है। ऐसे श्री गौराङ्ग महाप्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ। (यन्नाप्त कर्मनिष्ठैर्न च समधिगत यत्तपोध्यान-योगैर्वैराग्यैस्त्यागतत्वस्तुतिभिरपि न यत्तर्कित चापि कैश्चित् । गोविन्द *प्रेमभाजामपि न च कलित यद्रहस्य स्वय त नाम्नैव प्रादुरासीदवतरति परे यत्र त* नौमिगौरम् ॥)

श्री कृष्णदास कविराज के अनुसार कृष्ण का नाम सब पापों का नाश करता है, वह प्रेम का कारण है भक्ति को प्रकाशित करता है। प्रेम का उदय होने पर स्वेद, कम्प पुलक, गद्गद् वाणी और अश्रुधारा आदि सात्विक प्रेम विकार उत्पन्न होते हैं। अनायास ही भव का क्षय होता है तथा श्री कृष्ण की सेवा प्राप्त होती है। एक कृष्ण नाम करे सर्व पाप नाश। प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश। प्रेमेर उदय हय प्रेमेर विकार।

स्वेद कम्प पुलकादि गद्गदाश्रुधार अनायासे भव क्षय कृष्णेर सेवन। एक कृष्ण नामेर फले पाइ एतो धन ॥ महाप्रभु प्रार्थना करते हैं, 'हे जगदीश! मुझे धन, जन, सुन्दरी कविता—कुछ भी नहीं चाहिए—वह जन्म जन्म मे मेरी आप ईश्वर मे अहेतुकी भक्ति हो। हे गोविन्द! वह दिन कब आएगा, जब आपका नाम लेने पर मेरी आखो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होगी, मेरी वाणी प्रेमावेग से गद्गद् हो जाएगी और मेरा शरीर पुलकित हो जाएगा—न धन न जन न सुन्दरी कविता वा जगदीश कामये, मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भगवद्भक्तिर हेतुकी त्वयि। नयन गलदश्रुधारया वदन गद्गद् सद्धया गिरा। पुलकैर्निचित वपु कदा तव नाम ग्रहणेभविष्यति।

सत धर्मदास (जन्मकाल 1500 स० के लगभग)

धर्मदास अपने समर्थ गुरु कबीर के समान ही नैष्ठिक नामानुरागी थे। वे कहते हैं—नाम रटन लागी रहै, कोई साधु समाना···कोटि भरु को दान दे, नहिं नाम समाना ॥ धर्मदास अपने आपको सत्य नाम का व्यापारी कहते हैं—हम सत नाम के बैंपारी हम तो लादो नामधनी को पूरन सेय हमारी···नाम पदारथ लाद चला है, धर्मदास बैंपारी ॥

निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट, हरिव्यास तथा परशुराम जिनका समय प्राय पन्द्रह पन्द्रहवी और सोलहवीं शती के बीच में माना जाता है नाम-जप का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं। परशुराम अपनी कृति वार सोला मे कहते हैं—वार वजि निज राम सभाए, रतन जनन भ्रम वाद न हारूं···सो न विसरि आको निस्तारा, समदृष्टि होइ सुमरि अपारा ॥

मीराबाई (जन्म सवत् 1558-59) की भगवन्नाम के प्रति निष्ठा अनुपम थी। अपने पदो के माध्यम से उन्होने बार-बार जनमानस को नाम-जप के लिए

साग्रह प्रोत्साहित किया है। वे कहती हैं—राम-नाम रस पीजै मनुआ, राम-नाम-रस पीजै। तज कुसंग, सत्संग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजैं। मीरा के अनुसार नाम अनमोल धन है—पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो। वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु किरपा कर अपनायो॥ मीरा कृष्ण प्रेम की सजीव पुतली थी, दिव्य नाम की अनन्य उपासिका। उनका मन प्रभु के नाम को अहर्निश रटता रहता था—मेरो मन रामहि राम रटै रे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नाम-जप की परम्परा वैदिक युग से आरम्भ होकर गुरु नानक के समय तक अविच्छिन्न तथा अनवरत रूप से चली आ रही थी। हमारे आलोच्य काल मे यह नाम-जप की धारा अत्यत उद्दाम वेग से भारत के प्रत्येक भाग की प्रादेशिक भाषाओं मे प्रवाहित हो रही थी। पजाब प्रदेश इस तथ्य का अपवाद नही था। गुरु नानक ने इस भूभाग में प्रमुखत पजाबी भाषा मे नाम की महत्ता का प्रचार तथा प्रसार किया। उनकी वाणी का सकलन श्री गुरु ग्रथ साहिब के महला 1 मे प्राप्त होता है। इस महला (1) मे 2949 छन्द हैं। गुरु नानक की वाणी मे 19 रागो का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक राग मे वाणी या क्रम प्राय निम्नलिखित है—(अ) सबद (शब्द) (आ) असटपदीआ (अष्ट पदिआ) (इ) छत (छद) (ई) वारा (वारें)। यदि किसी राग मे 'सबद' नही हैं तो 'असटपदीआ' पहले रखी गई है। यदि असटपदीआं भी नही हैं तो 'छत' रखे गए हैं। यदि ये तीनो अविद्यमान हैं तो वारें पहले रखी गई हैं। इन सबके अतिरिक्त कुछ रागो मे कुछ वाणिया विशेष नामो से सम्बोधित हैं।

गुरुजी इस रहस्य से पूर्ण अवगत थे कि अव्यक्त आनन्दमय भगवत्स्वरूप ध्वनि मे—नाममय ध्वनि मे—ही प्रथम प्राकट्य ग्रहण करता है। प्राण की गुप्त रूप मे जो आनन्द-झकार उठती है, वह कण्ठ के द्वारा ध्वनिरूप मे अभिव्यक्त होती है। यह आनन्द की झकृति कभी ओमकार, कभी हीकार, कभी हुकार, कभी हीकार, कभी कृष्ण कभी गोविन्द और कभी राम रूप मे व्यक्त होती है। नाम मे रूप और रूप मे नाम निहित है। विश्वातीत को विश्व-प्राण मे अनुभव करने के लिए उनको नाम और रूप मे ग्रहण करना चाहिए। अत उनकी वाणी मे नाम की महत्ता का प्रतिपादन स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। यह अतिशयोक्ति न होगी यदि कहा जाए कि उनकी सम्पूर्ण वाणी नाममय ही है और वे साक्षात् नाम के विग्रह थे। इसी सदर्भ मे उनकी वाणी का अनुशीलन समीचीन होगा।

गुरु जी के अनुसार पारब्रह्म के अनेको नाम हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक तथा अनेको रूप हैं। ईश्वर के गुण अनन्त हैं तथा वर्णनातीत हैं। असख नाव असख (ध्राय महला 1, अपु—19) हैं—तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु न जा ही तेरे गुण केते (महला 1, आसा घर 4, महला 1,33/1 रहाउ)गुरु जी ने निम्नलिखित भगवान् के नामों का अपनी वाणी में वर्णन किया है—ध्वन्यात्मक —

ओम्, वर्णात्मक नाम दो प्रकार के हैं—निर्गुणी और सगुणी। निर्गुण नाम हैं—अच्युत, परब्रह्म, अविनाशी, पूर्ण, निरकार, अपरम्पार, अयोनि, स्वयंभू, अकालमूर्ति, अव्यक्त, अगोचर। सगुणी नाम अधिकांशत विष्णु के भिन्न भिन्न अवतारों से सम्बद्ध है जैसे—मधुसूदन दामोदर, हरि, मोहन, माधव, केशव, गोपाल गोविन्द, राम, कृष्ण, मुरारि। मुसलमानी नामों का प्रयोग भी किया गया है जैसे अल्लाह, करीम, रहीम, खुदा, खालिक, इनके अतिरिक्त गुरु जी ने ईश्वर को पति, मीत, पिआरा, प्रीतम और सजण कह कर भी सम्बोधित किया है। परन्तु गुरु जी की वृत्ति प्राय हरि और राम नाम में सबसे अधिक रमी है।

गुरुजी की वाणी में नाम-जप के तीन प्रकार मिलते हैं— (1) साधारण जप (2) अजपा जप (3) लिव जप। साधारण जप—यह जप जिह्वा से प्रारम्भ होता है। *यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे 'तोता रटनी' की संज्ञा प्रदान की है तथापि यह* जप 'अजपाजप' तथा लिव-जप की नींव है। गुरु जी कहते हैं कि यदि एक जिह्वा के स्थान पर लाख जीभें हो जाए और लाख से बीस लाख हो जायें तो मैं उन सारी जिह्वाओं से लाख लाख बार एक जगदीश का नाम जपूंगा। पति (ईश्वर) के मार्ग की यह सीढ़ियां हैं। इनके द्वारा साधक बीस से इक्कीस हो जाता है (इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख बीस। लखु लखु गेडा आखीअहि एकु नाम जगदीस॥ एतु राहि पति पवड़ीआ चढीए होइ इकीस— महला 1, जपु 32, नानक वाणी, पृ० 95)। अरे जीव, राम जपने से मन मानता है—स्थित होता है। (जीअरे राम जपत मन मानु रामु सिरी रागु, महला 1, घर 1, सबद 18/1, रहाउ ना० वा०, पृ० 117), हे प्यारे! हरि हरि जपो, गुरु से शिक्षा लेकर हरि ही कहो (हरि हरि जपहु पिआरिआ गुरमति ले हरि बोल 21/1, ना० वा०, पृ० 121) हे नर अमृतरूपी मीठे रस, हरि नाम का जप करो (हरि हरि नामु जपहु रसु मीठा भाहू सोल है, महला 1, 10/3, ना० वा० पृ० 631)

अजपाजप जिह्वा—जप का पूरा अभ्यास हो जाने पर *अजपाजप की स्थिति* आरम्भ होती है। इस जप में जिह्वा का प्रयोग वर्ज्य होता है। अत इसमें श्वास-प्रश्वास की संचालन-गति के आधार पर जप प्रारम्भ हो जाता है गुरु जी ने इस जप की महत्ता स्थान-स्थान पर प्रतिपादित की है। भिन्न भिन्न तिथियों के नाम गिना कर तथा सांसारिक मनुष्यों को चेतावनी देकर गुरुजी द्वादसी के संदर्भ में उन्हें भक्ति ज्ञान एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट करते हुए कहते हैं, "व्रत रखने वाला निष्काम होने का व्रत ले। वह साधक सदा अजपाजप करता रहे" (द्वादशी दइया दानु करि जाणै। बाहरि जातो भीतरि आणै॥ बरती बरत रहै निहकाम। अजपा जाप जपै मुखि नाम॥ बिलावलु, महला 1, थिति घर 10, जति 16/1—2, ना० वा०, पृ० 481) अजपाजप की स्थिति की *व्याख्या करते* हुए गुरु जी लिखते हैं—"तेरे तन, मन और मुख सदैव जप करते रहेंगे, अन्त करण

मे गुणो का समावेश हो जाएगा और मन मे धैर्य का।" (मनि तनि मुख जापै सदा गुण अंतरि मनि धोर ॥ रामकली, महला 1, दखणी, ओ अकार 49, ना० वा०, पृ० 524) सद्गुरु द्वारा शिक्षित साधक जब मिलनावस्था की अनुभूति प्राप्त करता है तो इस अवस्था मे उसकी सारी इच्छाए मन मे समाहित हो जाती हैं। कमल उलट जाता है और उसमे हरिनाम रूपी अमृत भर जाता है। मन कही भी आता जाता नही। अजपाजप चलने लगता है और वह कभी भूलता नही। अकथ कथा की धाराए मनसा मनहि समाई ॥ उलटि कमलु अमृति भरिआ इहु मन कतहु न जाई। अजपाजप न बीसरे आदि जुगादि समाई। (रागु मलार, वार महला 1, राणे कैलास तथा मालदे की धुनि। पउडी 21, ना० वा०, पृ० 773)

लिव जप—अजपाजप से साधक तृतीय और अंतिम सोपान तक पहुच जाता है। यह जप ही अंतिम सीढी है। इस जप मे वृत्ति द्वारा जप होने लगता है तथा शरीर, जिह्वा और मन एकनिष्ठा हो जाते है। गुरुजी कहते हैं कि मैं उन पर सदैव बलिहारी होता हू जिन्होने एक शब्द नाम मे एकनिष्ठ ध्यान (लिव) लगाया है (नानक तिन के सदि बलिहारी जिन एक सबदि लिव लाई ॥ रामकली महला 1, घरु 1, चउपदे 4/9, ना० वा०, पृ० 513)। गुरु की महिमा वर्णन करते हुए कहा गया है कि मेरा दयालु गुरु सदैव आनन्द मे लीन है। वह दिन-रात एक परमात्मा मे एकनिष्ठ ध्यान अर्थात् लिव लगाए रहता है और सत्य को देखकर विश्वास करता है। (मेरा गुरु दइआलु सदा रगि लीया। अहिनिसि रहै एक लिव लागी साचे देखि पतीणा ।1॥ रहाउ 1, रामकली दखणी, ना० वा०, पृ० 513)।

गुरु जी ने 'लिव-जप' का आध्यात्मिक रूपक द्वारा चित्रण निम्नलिखित वाणी में किया है—"शरीर कागज हो, मन दवात और जिह्वा लेखनी हो और हरि का गुणानुवाद ही उसकी लिखावट हो। अभिप्राय यह कि मन रूपी दवात मे जिह्वा रूपी लेखनी डुबो कर हरि गुण की लिखावट शरीर रूपी कागज पर लिखी जाए। नानकदेव जी कहते हैं कि ऐसा लेखक धन्य है, वह हृदय मे सत्य ही धारण करता है और उसी को लिखता है (काइआ कागदु जे थोए, पिआरे मनु मसवाणी धारि। ललता लेखणि सच की पिआरे हरि गुण लिख हु वीचारि ॥ धनु लेखारी नानका पिआरे साचु लिखो उरधारि ॥8॥3॥ सोरठि, महिला 1, घरु 1, असटपदीआ तितुकी, ना० वा०, पृ० 403) इस अवस्था मे मनुष्य का व्यक्तिगत आन्तरिक भाव, ब्रह्माण्ड के समष्टिगत आन्तरिक भाव मे मिलकर विलीन हो जाता है। यह घनीभूत भावविह्वलता न छुडाने से छूटती है और न तोडने मे टूटती है। इस अवस्था के बिना समग्र जीवन निस्सार और निष्फल है (अनदिनु नाम रतनि लिय लागै जुगि जुगि साचि समाने ॥ रागु परभाति विभास महला 1, चउपदे घर 1, 3/16, ना० वा०, पृ० 789) गुरुमुख लिव-जप मे निरन्तर जागता रहता है। इसमे केवल मात्र अनुभूति अवशिष्ट रहती है (गुरु

मुरि जाग रहे दिन राति। साचे की लिव गुरमति जाती ॥4॥5, मास सोलहे, महल 1,5, ना० वा०, पृ० 617) अहनिसि जागै नीद न सोवै। सो जाणै जिसु वेदन होवै। रागु मारु महला 1, चउपदे घर 5/1/12, ना०वा०, पृ० 584) गुरमुख (हरि म) लिव लगा कर हरि रूपी रत्न प्राप्त करता है। (गुरमुखि रतनु लहे लिवाइ—रामकली, महला 1, सिध गोसटि 35, ना०वा०, पृ० 542) जिन्होंने लिव लगाकर निर्भय हरि को मन म बसा लिया है, उन्ह हरि क सिंहासन पर बड़प्पन प्राप्त होता हे (तिन कउ तखति मिली वडिआई। निरभउ मनि वसिआ लिव लाई॥ मारु सोलहे, महला 1, 10/3, ना० वा०, पृ० 612) गुरु के उपदेश द्वारा ही राम नाम रूपी हीरा प्रकट होता है। द्वैतभाव के त्यागने से राम नाम की 'लिव' लग जाती है। (गुरमति प्रगटे राम नाम हरि। लिव लागी नाभि तजि दुजा भाउ—रागु बसतु, महला, 1, घरु 1, चउपदे, दुतुके 4/4, ना० वा०, पृ० 703) सदैव सहज समाधि लगी रहती है, हरि में ही एकनिष्ठ धारणा (लिव) लगी रहती है और जीव हरि का ही गुणगान करते हैं। (सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीआ हरि गुन गाई। रागु सारगा महला 1, घरु 1, 6/1, ना० वा०, पृ० 723) वास्तविक द्वादशी का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए गुरु जी कहते हैं—' जिनका मन मुद्राओं से ऊपर उठ चुका है वे रातदिन जागते हैं कभी नहीं सोते। ऐसा साधक लिव लगाकर सदा जागता रहता है। गुरु से परिचय होने के कारण उसे काल नहीं खाता। वे वास्तविक रूप स त्यागी हैं उन्होंने शत्रुओं को मार डाला है। जिसने ऐसी 'लिव' लगाई है नानक उसे प्रणाम करता है (बिलावलु, महला 1, थिति, घरु 10, जति 15, ना० वा०, पृ० 481) स्पष्ट है गुरु जी 'लिव जप' को सबसे अधिक महत्ता प्रदान करते थे क्योंकि यह परम दुर्लभ है और किसी बिरले ही साधक की यहा तक पहुच होती है। लिव-जप से उत्पन्न स्थिति को ताडी लगाना भी कहा गया है। इस दशा म साधक पूर्णरूपेण असम्प्रज्ञात समाधि में लीन होता है। गुरु नानक कहते हैं,' हे आदि कालीन और युगयुगान्तरो म विद्यमान हरि, हे सबसे परे और अपार प्रभु, हे आदि निरंजन और स्वामी, हे सत्यपुरुष, तुमसे युक्त होने की युक्ति क विषय मैं विचार करता हू और तुझ सच्चे से ताडी लगाता हू—आदि जुगादी अपर-अपारे। आदि निरंजन खसम हमारे॥ साचे जोग जुगति वीचारी साचे ताडी लाई है ॥1॥ मारु सोलहे, महला 1, 4/1, ना० वा०, पृ० 614) "केवल साधक ही ताडी नही लगाता प्रत्युत स्वय प्रभु भी ताडी लगाता है। "प्रभु आप ही सर्वत्र अपने साथ व्यवहार करता है, आप ही ताडी लगा कर अपने मे निमग्न रहता है (आपे आपि वरतदा आपि ताडी लाईअनु—रामकली की वार, महला 1, पउडी 7/1, ना० वा०, पृ० 573)" सृष्टि की पूर्वकालीन तमिस्रा में सृष्टिकर्ता ने ताडी लगाई थी—(के तडिया जुगधुधकारे। ताडी लाई सिरजण हारै॥

मारु सोलहे, महला 1, 4/2, ना० वा०, पृ० 614)।

गुरु जी का स्पष्ट अभिमत है कि नाम की प्राप्ति गुरु के द्वारा ही सभव हो सकती है। गुरु के बिना नाम प्राप्ति का अमोघ साधन है। इस सम्बन्ध मे गुरु का उपदेश परमावश्यक तथा अपरिहार्य है। गुरु नानक देव कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा साधक परमात्मा का नाम हृदय मे बसा लेता है और उसकी सत्य वाणी से प्रेरणा प्राप्त करके हरि का गुणगान करता है (गुरमती नामु रिदै वसाए। साची वाणी हरि गुण गाए ॥4॥ गउडी गुआरेरी ना० वा०, पृ० 222), गुरु के उपदेश द्वारा धर्म, धैर्य और हरिनाम प्राप्त होते है क्योकि गर्व, जो साधना के मार्ग मे बाधक है, बिना गुरु के नष्ट नही हो सकता। नाम जप द्वारा ही साधक नाम मे मिल जाता है (बिनु गुर गरबु न मेटिआ जाइ। गुरमति धरमु, धीरजु हरिनाइ॥ नानक नाम, मिलै गुण गाइ ॥12॥9॥ राग गउडी, महला 1, गउडी गुआरेरी ना० वा०, पृ० 228); अरे मन, शब्द चित्त मे लाकर तर जाओ। जिसने गुरु के मुख द्वारा नाम नही समझा, वह जन्म मरण तथा आवागमन के चक्र म फसा रहता है (मन रे सबदि तरहु चितु लाइ। जिनि गुरमुखि नामु न बुझिआ मरि जनमै आवै जाइ ॥1॥ रहाउ॥ रागु सिरी रागु, महला 1, घरु 1, 15, ना० वा०, पृ० 114), हे भूले बावरे मन। सुन, गुरु के चरणो मे लग जाओ। तू हरि का जप कर, नाम का ध्यान कर। नाम निधान ही मेरा धन है, गुरु ने दिया है, मैं गुरु पर बलिहारी जाता हू। बिना सद्गुरु के नाम की प्राप्ति नही होती और बिना नाम स्वाद कैसा। (सुणि मन भूले बावरे गुर की चरणी लागु। हरि जपि नामु धिआइ तू जमु डरपै दुख भागु ॥1॥ मैं धनु नामु निधानु है गुरु दीजा बलि जाउ ॥1॥1॥ रहाउ॥ बिनु सतिगुरु नाउ पाईए बिनु नावै किआ सुआउ ॥3॥ सिरी रागु, महला 1, घरु 1, असटपदीआ ना० वा०, पृ० 143)। मैंने गुरु के माध्यम से नाम को प्राप्त कर लिया है, मैं गुरु पर बलिहारी जाता हू (गुरमुखि पाइआ नाम हउ गुर कउ वारिआ ॥8॥ वार सूही की। सलोका नालि महला 1, पउडी, ना० वा०, पृ० 470), हे प्राणी, राम की भक्ति द्वारा सुख प्राप्त कर। गुरु की शिक्षा द्वारा तुझे हरि हरि का जप मीठा लगने लगे और तू हरि नाम मे ही समा जा(प्राणी राम भगति सुखु पाइये। गुरमुखि हरि हरि मीठा लागै हरि हरि नामि समाईए ॥1॥ रहाउ॥ रामकली, महला 1, असटपदीआ 3, ना० वा०, पृ० 504), पूर्ण गुरु से ही नाम पाया जाता है (पूरे गुरु ते नामु पाइआ जाइ ॥34॥ रामकली, महला 1, सिध गोसटि॥ ना० वा०, पृ०542) गुरु नाम रूपी अमृत का सागर है अत शिष्य जो कुछ भी चाहता है उससे प्राप्त कर सकता है। वह नामरूपी अमर पदार्थ गुरु से प्राप्त करके मन और हृदय मे बसा लेता है अत गुरु की सेवा ही शाश्वत सुख है(गुरु सागरु अमृतसरु जो इछे सो फलु पाए। नाम पदारथु अमरु है हिरदै मंनि बसाए। गुरसेवा सदा सुखु है जिसनो हुकमु

मनाए ॥7॥ माझ, महला 1, घरु 1, असटपदीआ 7/5, नानक वाणी, पृ० 593), हे मन, राम की भक्ति मे चित्त लगा। गुरु द्वारा नाम हृदय में जप और सहज भाव से घर मे जा (मन रे राम भगति चितु लाईये। गुरमुखि राम नामु जपि हिरदै सहज सेती घरि जाईये ॥1॥ रहाउ ॥ भैरव, रागु महला 1, घरु 1, चउपदे, नानक वाणी, पृ० 696), जिज्ञासु एक लिवतार लगाकर बैठा है। गुरु *की शिक्षा द्वारा हरिनाम को ही उसने आधार बना लिया है।* ऐसे साधक के लिए जलपर्वत और ऊची धार बाधा सिद्ध नही हो सकते। उसके लिए आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है (ऊहा बैसा एक लिवतार। गुरुके सबदि नाम आधार॥ ना जल डूगर न ऊची धार। निज घरि वासा तहमगु न चालण हार ॥3॥ मलार, महला 1, घरु 1, नानक वाणी, पृ० 757)।

गुरु नानक देव के अनुसार इस जन्म म नाम के प्रति अनुराग तभी सभव है जब मनुष्य ने अपने पूर्व जन्म मे अच्छे कर्मों द्वारा पुण्य अर्जित किये हो। वे कहते हैं, "हृदय के बीच म नाम का स्थित होना पहले के बडे भाग्य से सभव है (नानक हिरदे नामु बडे धुरि लागे ॥ 4 ॥ 5 ॥ रागु आसा, महला 1, चउपदे, घरु 2, नानक वाणी, पृ० 257), पूर्व जन्म के आज्ञानुसार गुरु द्वारा राम-नाम-जप से हरि की प्राप्ति हो गई (नानक राम नामु जपि गुरमुखि हरि पाए मसतकि भागा ॥5॥10॥ रागु सोरठि, महला 1, घरु 1, पचपद, नानक वाणी, पृ० 369)।

परन्तु यदि भगवान् की कृपा न हो तो नाम के जपने की इच्छा साधक के मन मे उत्पन्न हो ही नही सकती। यह इच्छा बलवती तभी होगी जब भगवान् की अनुकम्पा होगी। *तभी गुरुजी दृढतापूर्वक इन पक्तियो मे अपना मतव्य इस* प्रकार प्रकट करते हैं—' मेरे साहब मे तेरा ही बनाया हू। जब तू देता है तभी मैं तेरा नाम जपता हू (जा तू देहि जपि नाउ तेरा ॥ 1 ॥ रहाउ ॥ रागु आसा महला 1, सबद, चउपदे नानक वाणी, पृ० 268), कर्तार के नाम की कृपा से सत्य नाम की प्राप्ति होती है और इसी के द्वारा प्रतिभा प्राप्त होती है (सच नामि पति ऊपजै करमि नामु करतारु ॥ 4 ॥1॥ 37 ॥ वासा, घरु 3, महला 1, नानक वाणी, पृ० 270), मैं तेरा नाम तब कह सका, स्मरण कर सका, जब तूने मुझसे कहलवाया। तत्पश्चात् अमृत के समान हरि का नाम मेरे मन को अतीव अच्छा लगा (ता मैं कहिआ कहणु जा मुझे कहाइया। अमृतु हरि का नाम मेरे मनि भाइआ ॥ 2 ॥ वडहसु महला 1, छत, नानक वाणी, पृ० 370) यदि परमात्मा की कृपा हो, तभी सच्चे नाम की प्राप्ति होती है। मैं सत्य भाव से तेरी शरण म आया हू (करमि मिले पावे सचु नाउ। तुम सरणागति रहउ सुभाउ। रामकली, महला 1, असटपदीआ 7/6, ना० वा०, पृ० 509), यदि परमात्मा दया करे तो गुरु के उपदेश से जिज्ञासु को नामरूपी हीरा हस्तगत होता है (नानक

गुरमुखि पाइये दइआ करे हरि हीरु ॥4॥21॥ रागु सिरी रागु, महला पहिला 1, घरु 1, नानक वाणी, पृ० 121), वही साधक हरिनाम की प्राप्ति का लाभ दिन-रात प्राप्त करता है जिस पर देने वाला परमात्मा और गुरु कृपा करता है। उसी जन को गुरु के द्वारा शिक्षा प्राप्त होती है जिसके ऊपर कर्तार कृपादृष्टि करता है (अहिनिसि लाहा हरिनामु परापति गुरु दाता देवणहारु। गुरमुखि सिख सोई जनु पाए जिसनो नदरि करे करतारु ॥ 3 ॥ 5 ॥ रागु मलार, महला 1, चउपदे घरु 1, सबद नानक वाणी, पृ० 748)

जब कर्तार की कृपादृष्टि से साधक को सद्गुर की प्राप्ति हो जाती है तब उसके मन में नाम जपने की अपरिमेय तथा उत्कट अभिलाषा जन्म लेती है। इस वर्णनातीत उत्कंठा की व्याख्या करते हुए गुरु जी कहते हैं, "मरुस्थल वर्षा से कदापि तृप्त नहीं होता, अग्नि की वस्तुओं को जलाने की क्षुधा कभी नहीं मिटती, राजा कभी शासन करने से तृप्त नहीं होता, पानी से भरा हुआ अथाह सागर क्या सूख सकता है। हे नानक, उसी प्रकार नाम जपने वाले के अन्तर्गत सच्चे नाम की कितनी उत्कट अभिलाषा होती है। इस बात की क्या पूछताछ हो सकती है? (सलोकु—मारू भीहि न तृपतिया अगी लहै न भुख राजा राजि न तृपतिआ साइर भरे कि सुक ॥ नानक सच्चे नाम की केती पुछा पुछ ॥42॥ रागु माझ, महला 1, घरु 1, नानक वाणी, पृ०, 125)

एक स्थान पर गुरु नानक देव इस तथ्य की ओर भी संकेत करते हैं कि नाम से प्रेम हरि के भय के बिना नहीं होता। "बिन हरि के भय स प्रेम नहीं करता और नाम म प्रेम भी नहीं उत्पन्न होता। सद्गुरु से परमात्मा का भय उत्पन्न होता है तथा भोगद्वार की प्राप्ति होती है। भय से सहजावस्था की प्राप्ति होती, ज्योति से ज्योति मिल जाती है। गुरु शिक्षा से भय उत्पन्न होता है और उस भय से भय का समुद्र पार कर लिया जाता है। भय से निर्भय परमात्मा को मिलता है जो अनंत और असीम है (पउड़ी : मैं बिनु भरमु न कहीए नामि न लगे पिआरु। सतिगुर ते भउ ऊपजै पाइये मोख दुआर। मैं ते सहजु पाइए मिलि जोती ज्योति अपार॥ मैं ते मैजलु लघीये गुरमती वीचारु। मैं ते निरभउ पाइये जिसका अंत न पारावारु॥ 6॥ रागु मलार, वार, महला 1, सगे कैलास तथा मालदे की धुनि, नानक वाणी, पृ० 767)

नाम जपने का सबसे उपयुक्त समय ब्राह्म मुहूर्त है जब चारों ओर परम शान्ति का साम्राज्य छाया होता है। उस नीरव निस्तब्ध तथा आनन्द संचारिणी बेला म साधक का मन स्वयं ही हरि नाम की ओर उन्मुख हो जाता है। इस सम्बन्ध में गुरु जी कहते हैं, "अमृतवेला (ब्राह्म मुहूर्त) में उठकर सत्य नाम वाले परमात्मा की महिमा का ध्यान करो (अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥ 4॥ नानक वाणी, पृ० 81); जिन्हें पिछली रात्रि अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त म

परमात्मा का बुलावा आता है वे ही पतिरूपी प्रभु का नाम लेते हैं (पिछहु राती सवडा नामु खसम का लेहि ॥1॥ रागु मारु महला 1, चउपदे, घरु 1, सबद, नानक वाणी, पृ० 573), हे पुत्री, हे राजकुमारी चली जाओ। दिन सवार कर (ब्राह्म मुहूर्त को सभाल कर) सच्चा नाम जपो (गाछहु पुत्री राजकुआरि। नाम भणहु सचु दो तु सवारि, बसतु महला 1 घर 1, दुतुकीआ, असटपदीआ ॥ 8/1 नानक वाणी, पृ०709), प्रभात वेला (अमृत वेला या ब्राह्म मुहूर्त) मे गुरु के शब्द हरि-नाम का ध्यान करना चाहिए। सासारिक प्रीति को त्याग (नाउ प्रभाते सबदि धिआइये छोडहु दुनी परीता —रागु परभाती बिभास महला 1, चउपदे, घरू 1, सबद 4/9, नानक वाणी पृ० 783)। परन्तु ब्राह्म वेला का ध्यान आरम्भिक स्थिति के लिए ही आवश्यक है। जब साधक उच्चतर स्थिति म पहुच जाता है तो उसके लिए प्रत्येक क्षण ही जप के लिए उपयुक्त होता है अत गुरुजी कहते हैं कि यद्यपि अमृत वेला ही परमात्मा के स्मरण के लिए आवश्यक है तथापि जब ब्राह्म मुहूर्त के चिन्तन के अभ्यास द्वारा आठ पहर परमात्मा का भय मन म स्थिर हो जाए तो साधक का प्रत्येक क्षण नाम-जप का क्षण बन जाता है। हे नानक, इस प्रकार जब आठो पहर साहब म मन बसा रहे तभी सच्चा स्नान होता है॥36॥(सभे वेला वखत सभि जे अठी भउ होइ। नानक साहिबु मनि वसे सचा नावणु होइ ॥ 36 ॥ रागु माझ महला, 1 घरू 1, वार माझकी तथा सलोक महला 1 मलक मुरीद तथा चद्रहडा सोहीआ की धुनी गावणी, ना० वा०, पृ० 197)।

परन्तु सच्चे साधक के लिए नाम-जप की विशेष ऋतु नही मानी जा सकती, उसके लिए प्रत्येक ऋतु उपयुक्त है। प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नही। गुरु नानकदेव कहते हैं, "हे प्रभु, सारे महीनो ऋतुओ, घडियो और मुहूर्तों म तुम्हे स्मरण किया जा सकता है। हे सत्य तथा अलख अपार प्रभु गणना करके किसी ने भी तुम्ह नही प्राप्त किया (माहा रुती सभ तू घडी मूरत वीचारा। तू गणतै कि नैन पाइओ सचे अलख अपारा॥ 3 ॥ रागु माझ महला 1, घरु 1, असट-पदीआ, नानक वाणी, पृ० 178)।

आठो पहर नाम जप की मस्ती छा जाने पर साधक के लिए नाम जप के बिना एक क्षण भी रहना दूभर हो जाता है। ऐसी मन स्थिति मे गुरुजी पूछते हैं, 'हे मा नाम के बिना कैसे जीवित रहू ? तेरी शरण मे रहकर प्रतिदिन तेरा नाम जपता रहू, नाम मे रत होने पर ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (नाम बिना किउ जीवा माइ। अनदिनु जपतु रहउ तेरो सरणाइ॥ नानक नामि रते पति पाइ ॥ 8 ॥12॥ रागु गउडी, महिला 1, गउडी, असटपदीआ, ना० वा०, पृ० 232)। यदि मैं नाम लेता तो जीवित रहता हू, यदि नाम भूलता हू, तो मर जाता हू हे मेरी मा, तो फिर उस ईश्वर को कैसे भूल सकता हू ? वह साहब सच्चा है

और उसका नाम भी सच्चा है ॥1॥ रहाउ ॥ रागु आसा, महला 1, चउपदे, घरु 2, ना० वा०, पृ० 247) ।

पुराणो का अनुसरण करते हुए गुरुजी इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं कि कलियुग म मुक्ति का साधन एकमात्र राम नाम ही है। कलियुग मे राम नाम ही श्रेष्ठ वस्तु है। पाखण्डी ससार को ठगने के लिए आख बन्द करके नाक पकडते हैं अर्थात् प्राणायाम का दिखावा करते है (कल महि राम नामु सारु। अखी त मीटहि नाक पकडहि ठगण कउ ससारु ॥1॥ रहाउ ॥ रागु धनासरी, महला 1, चउपदे, घरु 3, सबद, ना० वा०, पृ० 415)।

गुरु नानकदेव का स्पष्ट अभिमत है कि मनुष्य का बिना हरिनाम के भव-जाल से छुटकारा पाना असभव है। वे कहते है, "बिना हरिनाम के छुटकारा नही मिलता। गुरु की शिक्षा द्वारा शिष्य का परमात्मा से मिलाप होता है (बिनु हरिनाम न छुटीए गुरमति मिलै मिलाइ ॥7॥ सिरी रागु महला 1, घरु 1, असटपदीआ, ना० वा०, पृ० 147), बिना नाम सब कुछ बेकार ही है, जनता भ्रम मे पड कर नष्ट हो रही है (विणु नावै बेकारि भरमे पचीए ॥5॥ रागु माझ महला 1, घरु 1, पउडी 5, ना० वा०, पृ० 182), प्रभु के नाम के बिना मनुष्य ठगा जा रहा है, लूटा जा रहा है, और प्रतिष्ठा गवा कर जाता है ॥18॥ परमात्मा के नाम बिना सारे पदार्थ नश्वर हैं ॥19॥ (नानक ठगिआ मुठा जाइ। विणु नावै पति गइआ गवाइ ॥18॥ नानक सचे नाम विणु सचै टोल विणासु ॥19॥ रागु माझ महला 1, घरु 1, सलोकु, ना० वा०, पृ० 185), नाम भुला कर अन्य कार्यों मे लगने से नर-जन्म वृथा जाता है क्योंकि बिना नाम के सारा खाना-पिना विपनत् हो जाता है (दूजी कारै लगि जनमु गवाइये। विणु नावै सम विसु पैझै खाइये ॥10॥ रागु माझ महला 1, घरु 1, पउडी 10, ना० वा०, पृ० 189), नाम बिना मनमुख (मन के पीछे दौडने वाले) दुख पाकर आवागमन के चक्कर मे पडे रहते है (विणु नावै दुखु पाइ आवण जाणिआ, ना० वा०, पृ० 188), प्रभु को नाम के भुलाकर नर जगत् मे भूत के समान फिरता है (नावहु भुला जगु फिरै बेतालिआ ॥14॥ पउडी, ना०वा०, पृ० 196), हे मूर्ख तूने रात्रि सोय कर गवा दी है और दिन खाने-पीने मे नष्ट कर दिया है, इस प्रकार हीरे के समान नर-जीवन कौडी के बदले जा रहा है, तूने राम का नाम नही जाना, फिर पीछे पछताना पडेगा (रैणि गवाई सोइ के दिवसु गवाइया खाइ। हीरे जैसा जनमु है, कउडी बदले जाइ ॥1॥ नाम न जानिआ राम का ॥ मूडे फिरि पाछे पछुताहि रे ॥1॥ रहाउ ॥ रागु गउडी गुआरेरी, महला 1, चउपदे, दुपदे, गउडी बैरागणि, ना० वा०, पृ० 215), नाम के बिना हठ निग्रह करने और जगल मे रहने से कोई भी मोक्ष का अधिकारी नही बनता (नाम बिना गति कोइ न पावै हठि निग्रह बेबाणै ॥ 3 ॥ 2 ॥ रागु गउडी पूरबी, महला 1, छन, ना० वा०,

पृ० 243), बिना नाम के जीवन क्या है ? सांसारिक चतुराई को धिक्कार है, धिक्कार है (*बिनु नावै किआ जीवना फिटु ध्रिगु चतुराई ॥1॥ रहाउ॥* आसा बाणी, महला 1, घरु 8, असटपदीआ 22, ना० बा०, पृ० 307), नानक यह विचार करके कहता है कि राम नाम के बिना मुक्ति असंभव है (राम नाम बिनु मुकति न होई नानकु कहै वीचारा ॥ 4 ॥ 2 ॥ रागु आसा, महला 1, छंत, घरु 1, नानक वाणी, पृ० 317), मूर्ख और अचेत प्राणी बिना हरि नाम के भ्रम में भटकते रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं, जिनके हृदय में न हरि की भक्ति और उसका नाम है वे अन्तकाल में दहाड़ें मार कर रोते हैं (बिनु नाम हरि के भरम भूले पचहि मुगध अचेतिआ ॥ हरि नामु भगति न रिदै साचा से अंति धाही रुंनिआ ॥ 4 ॥ 1 ॥ 5 ॥ रागु आसा, महला 1, छंत, घरु 3 ॥ नानक वाणी, पृ० 323), नाम के बिना मनुष्य का जीवन और उसका कर्म करना धिक्कारने योग्य है (नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवन करम करेहि ॥ 3 ॥ 1 ॥ रागु गूजरी, महला 1, चउपदे, घरु 1, सबद 1, ना० बा०, पृ० 356), बिना नाम के इस संसार में कोई रस नहीं है और विषयासक्त नर माया का विष लाद कर यहां से चले जाते हैं (बिनु नावै को रसु नही होरि चलहि बिखु लादि ॥1॥ मारू महला 1, घरु 1, असटपदीआ, ना० बा०, पृ० 591), जिन्होंने नाम भुला दिया है उनका कोई भी ठौर ठिकाना नहीं होता (जिनी नामु विसारिआ तिना ठउर न ठाउ ॥8॥ ॥4॥ नानक वाणी, पृ० 581), नाम के भूलने पर मनुष्य चोटें खाते हैं अर्थात् यातनाएं सहते हैं क्योंकि बहुत चतुराई से भी भ्रम दूर नहीं होता, (नावहु भुली चोटा खाए । बहुतु सिआणप भरमु न जाए, मारु सोलह, महला 1, 8 ॥ 5 ॥ ना० बा०, पृ० 617), नाम के बिना समस्त संसार त्रयताप से ग्रस्त है और द्वैतभाव में ही डूब-डूब कर मर रहा है (नाम बिनु जगु रोगी बिआपिआ दुबिधा डुबि डुबि मरीऐ ॥1॥ रहाउ ॥ भैरउ, रागु महला 1, घरु 2, पृ० 692) राम नाम के बिना जगत में जन्म लेना व्यर्थ है। नाम के बिना मनुष्य विष खाता है, विष के वचन बोलता है तथा उसका जन्म निष्फल जाता है, यह मर कर आवागमन के फंदे में फंसा रहता है (राम नाम बिनु बिरथे जगि जनमा । बिखु खावै बिखु बोली बोलै, बिनु नावै निहफलु मरि भ्रमना ॥ 1 ॥ रहाउ ॥), राम नाम के बिना नर सांसारिक जंजालों में उलझ कर मर जाता है (राम नाम बिनु उरझि मरै ॥ 2 ॥), हे साधक हरि का नाम जप, जो हरि नाम जपता है वह संसार सागर से पार हो जाता है। राम-नाम के बिना शान्ति नहीं प्राप्त होती (राम नाम बिनु साति न आवै जपि हरि हरि नामु सुपारि परै ॥ 3 ॥ भैरउ, रागु महला 1, घरु 1, चउपदे, ना० बा०, पृ० 697), बिना नाम के संसार में सूतक और छूत है (बिनु नावै सूतकु जगि छोति ॥ 4 ॥ रागु आसा, महला 1, घरु 2, असटपदीआ, ना० बा०, पृ० 282)।

नाम-जप की महत्ता को समझ कर भी जो नर उस ओर प्रवृत्त नही होता वह निश्चय ही अभागा है क्योकि नाम ही नवनिधि है, कुशते का मसाला है, दीपक है, हीरा है, पट कर्म है, निर्मल धन है, कठ का हार है, निर्मल जल है तथा अमृत सदृश है। गुरु नानकदेव कहते है, "यदि तुम राम-नाम नही जपते हो तो यह तुम्हारा दुर्भाग्य है क्योकि हमारा प्रभु राम युग-युगान्तरो से दाता रहा है (राम न जपहु अभागु तुमारा। जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा ॥1॥ रहाउ ॥ रागु गउडी, महला 1, असटपदीआ, गउडी 16, ना० वा०, पृ० 237), सच्चे नाम की नवनिधि जब प्राप्त हो जाती है तब विरह मे न तो पुत्र रोता है और न माता दुखित होती है (सचु नाम जा नवनिधि पाई। रोवै पूतु न कलपै माई ॥2॥ रागु आसा, महला 1, पचपदे 23, ना० वा०, पृ० 265), दुखो के विष को दूर करने के लिए हरि नाम ही कुशते का मसाला है। इस मसाले को पीसने के लिए सतोष ही सिल है और हाथो से दान देना उसका वास्तविक पीसना है। इस हरि नाम रूपी कुशते का नित्य सेवन कर, इससे तेरी देह नही छीजेगी (दुखु महुरा मारण हरि रामु। सिला सतोख पीसण हथि दानु ॥ नित नित लेहु न छीजै देह अत कालि जमु मारै ठेह ॥1॥ रागु मलार, महला 1, चउपदे, घरु 2, ना० वा०, पृ० 750), एक नाम ही मेरा दीपक है इसमे दुख रूपी तेल पडा है। इस दीपक के प्रकाश ने तेल को सोख लिया है अत यम से मिलाप होना बद हो गया है (दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु। उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिउ मेलु ॥1॥ आसा, घरु 3, महला 1, 32, ना० वा०, पृ० 271), हरि का नाम हीरा, रत्न और लाल है (हीरा नामु जवेहर लालु ॥ 8 ॥ 5 ॥ रागु आसा, महला 1, घरु 2, ना० वा०, पृ० 284), हरि का नाम समस्त सुखो तथा ऐश्वर्यों का भण्डार है (हरि का नामु निधानु है ॥ 8 ॥ 15 ॥ आसा काफी, महला 1, घरु 3, असटपदीआ, ना० वा०, पृ० 298), नाम रूपी रत्न अमूल्य हीरा है (नाम रतनु हीरा निरमोलु ॥ 2 ॥ रामकली, महला 1, असटपदीआ, ना० वा० पृ० 509), नाम रूपी रत्न ही परम लाभ है। लाहा नामु रतनु जपि सारु ॥ रामकली, महला 1, दखणी, ओअकारु ॥ 12 ॥ ना० वा०, पृ० 527), मन मे माणिक्य और लाल है, नाम ही रत्न है, वही अमूल्य पदार्थ है और हीरा है (मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथु हीरु। 4 ॥ 21, रागु सिरी रागु, महला पहला 1, घरु 1, ना० वा०, पृ० 121); निरजन नाम ही योगियो का षट् कर्म है (खट् करम नामु निरजन सोई ॥ 1 ॥ रहाऊ ॥ प्रभाती-विभास, महला 1, असटपदीआं 3, ना० वा०, पृ० 794); राम नाम निर्मल धन है, जिसे देने वाला ही देता है (राम नामु धनु निरमलो गुरु दाति करे प्रभु सोइ ॥ 1 ॥ रहाउ ॥ सिरी रागु, महला 1, घर 1, असटपदीआं, 15, ना० वा०, पृ० 156); मेरे लिए कोई अन्य स्थान नहीं है। नाम-निधानु है गुरि दीआ बलि जाउ ॥ 1 ॥

रहाउ ॥ सिरी रागु महला 1, घरु 1, असटपदीआ 8, ना० वा०, पृ० 143), नाम बिना और कोई साथ देने वाला धन नही है और विषयो क धन तो भस्म के समान हैं (बिनु नावै होरु धनु नाही होरु बिखिआ समुछारा ॥ 4 ॥ वार माझ की तथा सलोक, महला 1, पउडी, ना० वा० पृ० 180), मेरे गले में हरि के नाम का हार और सच्चे शब्द का निशान पडा है (मै नामु हरि का हारु कठे साच सबदु नीसाणिआ ॥ 2 ॥ बिलावलु महला 1, दखणी, ना० वा०, पृ० 489), हरि हरि के नाम को जीवात्मा रूपी स्त्री कठ का हार बनावे और पहन, दामोदर क नाम का दतमजन बनावे (हरि हरि हारु कठिले पहिरै दामोदरु दतु लेई ॥2॥ आसा, महला 1, घर 6, 35, ना० वा०, पृ० 273), नाम रूपी जल शुभ कर्म और सत्य के चन्दन से शरीर सुगन्धित करे, तभी मुख उज्ज्वल होता है (नाउ नीरु चगिआईआ सतु परमलु तनि वासु। ता मुख होवै उजला ·· ॥ 3 ॥ रागु सिरी रागु महला 1, घरु 1, 5, ना० वा०, पृ० 104), हरि का नाम निर्मल जल है, मन उसमे स्नान करने वाला है और हे भाई सद्गुरु स्नान कराने वाला है। (हरि जलु निरमलु मनु इसनानी मजनु सतिगुरु भाई ॥ 7 ॥ 4 ॥ रागु गूजरी, महला 1, घरु 1, असटपदीआ ना० वा०, पृ० 363) हृदय में स्थित नाम तथा मुख म स्थित नाम अमृत के समान है (नामु रिदै अमृत, मुखि नामु ॥ रहाउ ॥ रागु गउडी गुआरेरी, महला 1, चउपदे, सबद, गउडी 6, नानक वाणी पृ० 204), राम नाम की वही व्याख्या कर सकता है, जो उसे जानता है। जो इसे जानता है, वही अमृत पीता है। जिन्होने इस अमृत को पी लिया है वे मस्त हो गए हैं, उनके बधन की फासिया कट गई हैं (करे वखि आणु जाणै जे कोई। अमृतु पीवै सोई ॥ रहाउ ॥ जिन्ह पीआ से मसत भए है टूटे बधन फाहे ॥ 2 ॥ रागु आसा, महला 1, सबद, घरु 2, 8, ना० वा०, पृ० 257), भक्त हरि के नाम रूपी अमृत (भोजन) को तृप्त हो होकर (छक छक कर) खाते हैं (अमृतु भोजनु नामु हरि रजि रजि जन खाहु—रागु बिहागडा, बिहागडे की वार, महला 1, पउडी ना० वा०, पृ० 366), म हरि क अमृत नाम को चख कर तृप्त हो गई और उस नाम को अपने हृदय म धारण कर लिया (हरि नामु अमृतु चाखि तृपती नानका उर धारिआ ॥ 4 ॥ 1 ॥ बिलावलु, महला 1, दखणी, छत, ना० वा०, पृ० 488), मैंने अमृत के भण्डार(हरि के) नाम को अपने गले और हृदय मे धारण कर लिया है (अमृतु नामु निधानु कठि उर धारिआ ॥ पउडी, बिलावलु की वार, महला 1, ना० वा०, पृ० 490), हरि का अमृत नाम सदैव सुखदाता है और अत मे वही सहायक होता है (अमृत नाम सदा सुखदाता अते होई सखाई। पउडी, रागु मलार, वार, महला 1, ना० वा०, पृ० 765)।

तभी गुरु नानक देव कहते हैं कि हे मन ! तू नाम से ऐसी प्रीति कर जैसे कमल तथा मछली की जल से, चातक की मेघ से, जल की दूध से तथा चकवी की

सूर्य से होती है (रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि। लहरी नालि पछाडीये भी विगसै असनेहि ॥ 1 ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर। जिउ अधिकउ तिउ सुखु घणो मनि तनि सांति सरीर ॥ बिनु जल घडी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर ॥ 2 ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चातिक मेह। सर भरि थल हरीआवले इक बूंद न पवई केह, रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल दुध होई। आवटणु आपे खवै दूध कउ खपणि न देइ ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चकवी सूर। बिनु पलु नीद न सोवई जाणै दूरि हजूरि ॥ सिरी रागु, महला 1, घरु 1, असटपदीआ 11, ना० वा०, पृ० 148, 149)।

हरि नाम अतुलनीय तथा अद्वितीय है। गुरु जी कहते हैं, "मेरे शरीर की एक-एक रत्ती को तोल में काट कर होम किया जाए, प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित करके तन और मन की समिधा की जाए, इसी प्रकार यदि लाखो करोडो कर्म किए जाए तो भी हरिनाम की तुलना में नहीं रखे जा सकते। सिर पर आरा रखवा कर शरीर को आधा कटा दिया जाए, या शरीर को हिमाचल में गला दिया जाए, फिर भी मन से रोग नहीं जाते, मैंने भली-भांति परख कर ली है कि हरिनाम की तुलना में कुछ भी नहीं रखा जा सकता (तनु बैसंतरि होमीये इक रती तोलि कटाइ। तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ ॥ सरीरु कटाइये सिरि करवतु धराइ। तनु हेमचलि गालीये भी मन ते रोगु न जाइ ॥ हरिनामै तुलि न पुजई सम डिठो ठोकि वजाई ॥3॥ सिरी रागु, महला 1, घरु 1, 14, ना० वा० पृ० 154), हठयोग की क्रियाओ से काया क्षीण होती है, अत एव तप करने से मन रसाई नही होता। राम नाम के समान अन्य कोई साधन समता नहीं कर सकता (हठु निग्रहु करि काइआ छीजै। वरतु तपनु करि मनु नहि भीजै ॥ राम नाम सरि अवरु न पूजै ॥ 1 ॥ रामकली, महला 1, असटपदीआ 5, ना० वा०, पृ० 507।

इसीलिए नाम-विहीन व्यक्ति सर्वथा हेय, त्याज्य तथा निकृष्टतम समझा गया है। गुरु नानक देव कहते है, "नाम से विहीन व्यक्ति अंधा, बधिर, मूर्ख, गवार, हीन, नीच और बुरे से बुरा है" (अधी बोली मुगधु गवारु। होणो नीचु बुरो बुरिआरु ॥4॥ रागु परभाती विभास, महला 1, चउपदे, घरु 1, सबद, ना० वा०, पृ० 785)

नाम-जप ईश्वर का आदेश है, हुक्म है अत मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। गुरु जी इस आज्ञा का रहस्य उद्घाटन करते हुए बताते हैं, "एक नाम का जपना ही हुक्म है, इसका भेद सद्गुरु ने मुझे भली-भांति बता दिया है" (एकोनामु हुकमु है, नानक सतिगुरु दीआ बुझाइ जीउ ॥15॥ सिरी रागु, महला 1, घरु 3, (18) ना० वा०, पृ० 161) मैंने हुक्म को पहचान लिया है अत. कथनी नही कथन करता

अर्थात् मेरी कथनी और करनी मे भेद नही रहा, फलस्वरूप गुरु की शिक्षा द्वारा सहज पद मे समा गया हू (कथउ न कथनी हुकमु पछाना। नानक गुरमति सहज समाना ॥8॥1॥, रागु गउडी, महला 1, गउडी गुआरेरी, असटपदीआ, ना० वा०, पृ० 218)।

हुक्म का पालन करते हुए साधक को चाहिए कि इस भवसागर को पार करने के लिए नाम-जप को बेडा बनाए। "हे विप्र तू हरि को शालिग्राम बना और शुभ करनी को तुलसी की माला समझ, राम-नाम के जप का बेडा बाधो। हे दयालु, दया कर" (सालग्राम बिप पूजि मनावहु सुक्रत तुलसी माला। राम नामु जपि बेडा बांधहु दइआ करहु दइआला ॥1॥ बसतु हिंडोल, घरु 2, 7, ना० वा०, पृ० 705)।

नाम मजिष्ठा-राग है जिसके द्वारा साधक ने अपने आपको पक्के रग मे रग लिया है। हे हरि, तेरा एक नाम भी मजीठी रग है, हे प्रियतम उस मजीठी रग मे मेरा चोला पक्के रग वाला हो गया है। (तेरो एको नामु मजीठड़ा रता मेरा चोला सद रग ढोला ॥1॥ रहाउ, रागु सूही, महला 1, चउपदे घरु 1, 4, ना० वा० पृ० 438), यदि शरीर रग वाली मिट्टी बन जाए, तभी नाम रूपी मजीठ का पक्का रग चढता है। यदि रगने वाला साहब इस रग मे रग दे तो मेरा अहोभाग्य होगा और ऐसा रग कभी न देखा होगा। जिनके चोले (शरीर) इस रग मे रगे हुए है पति उनके पास ही है (काइआ रडणि जे थीयै पिआरे पाइयै नाउ मजीठ। रडण वाला जे रडै साहिबु ऐसा रगु न डीठ ॥2॥ जिनके चोले रतडे पिआरे कतु तिना के पासि ॥ 3 ॥ रागु तिलग महला 1, घरु 3, ना० वा०, पृ० 429)।

ऐसे रग मे रगे हुए भक्त पर गुरु नानक कहते है कि मैं कुरबान जाता हू। "हे कृपालु ! मैं तेरे ऊपर बलिहारी जाता हू, मैं तेरे ऊपर कुरबान होता हू। जो तेरा नाम लेता है, मैं उनके ऊपर बलिहारी जाता हू। जो तेरा नाम लेते है, मैं उनके ऊपर सदैव कुरबान जाता हू" (हउ कुरबाने जाउ मिहरवाना हउ कुरबाने जाउ। हउ कुरबाने जाउ तिना के लेनि जो तेरा नाउ ॥ लैनि जो तेरा नाउ तिना के हउ सद कुरबाने जाउ ॥1॥ रहाउ, रागु तिलगा, महला 1, घरु 3, ना० वा०, पृ० 429), जिन्होने तेरा नाम सुनकर उस पर मनन किया है मैं उनके ऊपर कुरबान हू (नानक जिनी सुणि कै मंनिए हउ तिना विटहु कुरबाणु ॥11॥ वार सूही की सलोका नालि महला 1, सलोकु ना० वा०, पृ० 468)

नाम लेना सरल कार्य नही, यह काम बहुत कठिन है। भगवान् की कृपा जिस पर होती है वही नाम ले सकता है। "हे प्यारे, नाम कहने मे अति कठिन है। फिर किस प्रकार सच्चा नाम सुना जाए। जिन्होने नाम की प्रशसा की है, मैं उन पर बलिहारी जाता हू। यदि नाम प्राप्त हो जाए तो मैं सतुष्ट हो जाऊ,

परतु कृपा दृष्टि करने वाला यदि उसे दे, तभी मिल सकता है" (आपणि अउवा आजीए पिआरे किउ सुणीये सचु नाउ। जिनी सो सालाहिआ पिआरे हउ तिन बलिहारे जाउ ॥ नाउ मिलै सतोखीए पिआरे वदरी मेलि मिलाउ ॥7॥ सोरठि, महला 1, घरु 1, असटपदीआ, तितुकी 3, ना० वा०, पृ० 403)।

अन्य सब सासारिक सुख निस्सार हैं केवल नाम जपना ही वास्तविक सुख है। गुरुजी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हुए कहते हैं, "यदि मैं शरीर मे चोआ चन्दन आदि सुगधित पदार्थ मलू, बहुमूल्य वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र पहन कर फिरू, हरिनाम के बिना मैं सुख नही पा सकता।" (चोआ चदनु अकि चडावउ। पाट पटबर पहिरि हढावउ॥ बिनु हरिनाम कहा सुख पावउ ॥1॥ रागु गउडी, महला 1, गउडी 10, ना० वा०, पृ० 229), इसीलिए गुरु नानक देव कहते हैं कि मैं तो नाम-जप के द्वारा जी रहा हू, "प्रभु तुम शाहों-बादशाहो के सिर के भी स्वामी हो, नानक तो नाम-जप कर ही जी रहा है (साह पातिशाह सिरि खसमु तू जपि नानक जीवै नाउ जीउ ॥19॥ सिरी रागु, महला 1, घरु 3, 18, नानक वाणि, पृ० 161)।

रात दिन नाम जपना ही गुरु जी का चरम ध्येय है। वे कहते हैं, "मेरा मन गुरु द्वारा, उसकी वाणी द्वारा केवल इतनी बात जानता है कि रात-दिन नाम का ध्यान करना चाहिए' (नानक गुरमुखि सवद पछाणै अहिनिसि नामु धिआइए ॥1॥ रागु आसा, महला 1, छत, घरु 1, 3, ना० वा०, पृ० 318), हे नर! मन से नाम को मत भुलाओ, अहनिशि उसी का ध्यान करो (मनहु न नामु विसारि अहि निसि धिआइयें ॥1॥ सूही, महला 1, काफी 1, घरु 10, 5, ना० वा०, पृ० 446), हे साधक, अहिनिशि राम के रग म रगे रहो। यह जप, तप और सयम का सार है ॥3॥ मारु सोलहे, महला 1,10, ना० वा०, पृ० 631)

तोते के समान शास्त्रादि का अध्ययन निरर्थक तथा निष्फल है अत गुरु नानक देव सच्चे तथा पवित्र मन से किए हुए नाम-जप को ही वास्तविक अध्ययन मानते हैं। मनुष्य चाहे पढ पढ कर गाडिया भर दे पढ-पढकर पुस्तको से घर भर ले ' मनुष्य चाहे पढ-पढ कर पुस्तको से नौकाए भर द, पढ-पढ कर पुस्तको द्वारा खत्ते भर दे वह वर्षों तक, महीनो तक पढ़ता जाए, चाहे वह सारी आयु तक पढता जाए, और अन्तिम श्वास तक पढे, किन्तु नानक के लेखे मे केवल एक बात है और वह यह कि परमात्मा के नाम का स्मरण वास्तविक अध्ययन है और अन्य बातो का अध्ययन अहकार और सिर खपाना है" (पडि पडि गडी लदी अहि पडि पडि भरी अही साथ। पडि पडि वेडी पाइये पडि-पडि गडी अहि खात ॥ पडी अहि जेते बरस-बरस पडी अहि जेते सास ॥ नानक लेखे इक गल होर हउगै झखणा झाल ॥16॥ सलोकु, रागु आसा, महला 1, वार सलोका नालि, सलोक भी, महले पहले के लिए, ना० वा०, पृ० 337)।

परलोक में केवल नाम ही एकमात्र सहारा है क्योंकि केवल नाम ही साथ जाता है। "यदि नाम मिलता है, तो वही मेरे साथ अन्त तक चलता है। बिना *नाम के काल ने सबको ग्रस रखा है"* (नामु मिलै चलै मैं नालि। बिनु नावै बाधी सभकालि ॥1॥ रहाउ॥ रागु गउड़ी गुआरेरी, महला 1, चउपदे 6, ना० वा०, पृ० 204), नाम-जप का महत्व अपरिमेय तथा अवर्णनीय है। संसार की कोई भी वस्तु चाहे वह अनन्त गुणों से मण्डित हो, नाम-जप के समक्ष हेय और त्याज्य है। सभी गुरु नानक देव नाम-जप की सर्वश्रेष्ठता का वर्णन करते हुए नहीं अघाते। उनकी वाणी का वृहदंश इसी तथ्य के प्रतिपादन से अलंकृत हो उठा है, *"जो नाम स्मरण करते हैं तथा जो परिश्रम करते हैं उनके मुख उजले होते हैं।* गुरु नानक देव कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति अपने साथ कइयों को मुक्त कर देते हैं (जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि। नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥ 1 ॥ जपु, सलोकु 1, ना० वा०, पृ० 99), नाम में अनुरक्त होने से अहंकार नष्ट हो जाता है, नाम में अनुरक्त होने से साधक सत्य में समा जाता है, नाम में अनुरक्त होने से योग की युक्ति का विचार स्पष्ट होता है। नाम में लगने से शिष्य को मोक्ष का द्वार प्राप्त हो जाता है। नाम में ही लगने से तीनों भुवनों की समझ आ जाती है। नानक कहते हैं कि नाम में अनुरक्त होने से सदैव ही सुख प्राप्त होता है। नाम में अनुरक्त होने से सिद्धों के साथ गोष्ठी होती है। नाम में लगे रहने से शाश्वत तप होता है। नाम में लगना ही सच्ची करनी का सार तत्व है। नाम में अनुरक्त होने से ही समग्र गुण ज्ञान और विचार मिलते हैं। बिना नाम के बोलना सब व्यर्थ ही है। नानक कहते हैं कि जो व्यक्ति नाम में अनुरक्त है, उनका जय जयकार है (नामे राते हउमै जाइ। नामि रते सचि रहे समाइ। नामि रते जोग जुगति बीचारु। नामि रते पावहु मोख दुआरु॥ नामि रते त्रिभवन सोझी होइ। नानक नामि रते सदा सुखु होइ ॥32॥ नामि रते सिध गोसटि होइ। नामि रते सदा तपु होइ॥ नामि रते सचु करणी सारु। नामि रते गुण गिआन बीचारु॥ बिनु नावै बोलै सभु वेकारु। नानक नामि रते तिन कउ जैकारु ॥33॥ रामकली, महला 1, सिध गोसटि, ना० वा०, पृ० 542), हे अवधूत योगी, तू सारे वाद-विवाद का निष्कर्ष सुन। बिन नाम के योग कभी नहीं हो सकता, जो नर नाम में अनुरक्त है वह सदैव मतवाला बना रहता है, नाम से सुख प्राप्त होता है, नाम में ही समग्र रहस्य प्रकट हो जाते हैं, नाम से ही समझ प्राप्त होती है (सबदै का निबेड़ा सुणि तू अउधू बिनु नावै जोगु न होई। नामे राते अनदिन माते नामै ते सुखु होइ॥ नामै ही ते सभु परगटु होवै नामे सोझी पाई ॥72॥ रामकली महला 1, सिध गोसटि, ना० वा०, पृ० 546), हरि का नाम अदृश्य, अगोचर और अपार है, प्यारा नाम अत्यन्त रसीला और मीठा है हे हरि। नानक को युग युगान्तरों में हरि यश प्रदान कर ताकि वह हरि जप करे,

उसका अन्त नही पाया जाता। हृदय मे नाम रूपी हीरे की प्राप्ति से और हरि का जप करने से मन धैर्यशील हो जाता है, दुर्गम मार्ग के भय को दूर करने वाला हरि प्राप्त हो जाता है और पुन जन्म धारण नही करना पड़ता। जो हरि का जप जपता है, उसे गुरु की बुद्धि प्राप्त होती है, यम के दूत तथा काल उसके सेवक बन जाते हैं। (अहसट अगोचरु नाम अपारा। अति रस मीठा नामु पिआरा।। नानक कउ जुगि-जुगि हरि जसु दीजै हरि जपीए अतु न पाइआ ॥5॥ अतरि नामु परापति हीरा। हरि जपते मनु मन ते धीरा ॥ दुघट घट भउ भजन पाइए। बाहुडि जनमि न जाइआ ॥6॥ जिनि जपु ओ सतिगुर मति वा के। जय ककर कालु सेवक पग ताके ॥8॥ मारु, महला 1, दखणी 21, ना० बा०, पृ० 661), वे याचक हरि का नाम जप, जो हरि नाम जपता है वह इस भवसागर से पार हो जाता है (जपि हरि हरि नामु सु पारि परै ॥3॥ भैरउ, रागु महला 1, घरु 2, 8, ना० बा०, पृ० 697); जब से मैं रगीले नाम मे अनुरक्त हो गई हू तब से राम नाम जपने लगी हू और मेरा मन धैर्यशील हो गया है (जब भी राम रगीले राती राम जपत मन धीरे ॥2॥ राग सारग, महला 1, चउपदे, घरु 1, सबद ना० बा०, पृ० 720), नाम मे सारी जाति है और उसी मे सब प्रतिष्ठा है, नाम से ही गति प्राप्त होती है। नानक कहता है कि गुरु के उपदेश द्वारा लिव लगाकर नाम का ध्यान कर (नामे ही सम जाति पाति नामे गति पाई ॥ गुरमुनि नामु धिआईये नानक लिव लाई ॥4॥ सारग की वार महला 1, राइ महमे हसने की धुनि, पउडी 4, ना० बा०, पृ० 729), नाम के मनन करने से सच्चा मार्ग प्रकट हो जाता है और नाम मे ही समस्त प्रकाश है (नाम मनिये पधु परगटा नामे सम लोई। 7, पउडी, ना० बा०, पृ०, 732), नाम पर मनन करने से हृदय मे नाम उत्पन्न हो जाता है, जिससे सहज ही सुख प्राप्त होता है। नाम पर मनन करने से शान्ति उत्पन्न होती है और मन मे हरि बसा लिया जाता है (नाइ मनिये नामु ऊपजै सहजै सुखु पाइआ। नाइ मनिये साति ऊपजै हरि मनि वसाइआ ॥ पउडी ॥9॥ ना० बा०, पृ० 734)।

इसलिए नानक देव जी कहते हैं कि निर्मल नाम ही मेरा आधार है (निरमलु नामु मेरा आधारु ॥8॥1॥ रागु आसा महला 1, घरु 2, ना० बा०, पृ० 278) वे अपने शिष्यो को उपदेश देते हैं कि कडवे अहकार को त्याग कर अत्यन्त निर्मल राम नाम का स्मरण करो (सिमरहु राम नामु अति निरमलु अवर तिआगहु हउमै कउरा ॥1॥ रहाउ ॥ रागु आसा, महला 1, घरु 2, असटपदीआं ॥8॥ ना० बा०, पृ० 288), तथा एक परमात्मा मे ही नाम का जप करो क्योकि अन्य कार्य निष्फल हैं (जपहु त एको नामा। अवरि निराफलु कामा ॥1॥रहाउ॥ रागु सूही, महला 1, चउपदे, घरु 1, सबद ना० बा०, पृ० 435)।

उपनिषदो मे वर्णित किया गया है कि वह परम ब्रह्म रस ही है।स एव रसाना

रसतम'। छान्दोग्योपनिषद अ०/ख/ म० 3। (इसी अभिमत को दुहराते हुए नानक देव जी वही मस्ती लाने वाले नाम को रस तथा वही महारस कहते हैं और इस गुरु के माध्यम से प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। साथ ही इस तथ्य की ओर सकेत करते हैं कि इस परम रसीले महारस से समस्त तृष्णाओं का अत होना अनिवार्य है, "हे बाबा, नाम रूपी रस पीकर मन मतवाला हो जाता है तथा सहजावस्था के रग मे वह रग जाता है बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रग रजि रहिआ आसा, महला 1, घरु 6, 38/1, रहाउ, ना० वा०, पृ० 276); नानक कहते हैं कि नाम का रस अत्यत मीठा होता है, पूर्ण गुरु से ही सत्य प्राप्त होता है—नानक नामु महारसु मीठा गुरि पूरै सचु पाइआरागु गउडी पूरबी, महला 1,4/2, ना० वा०,पृ० 243)है नानक, नाम रूपी महा मीठा रस(अमृत) प्राप्त हो गया और उसी नाम ने सारी तृष्णा का निवारण कर दिया—नानक नामु नामु महारसु मीठा तृसना नामि निवारि-धनासरी, महला 1,5/2, ना० वा० पृ० 423)

नाम-जप के लिए गुरुजी ने जपमाला का उल्लेख भी कुछ स्थानो पर किया है। वे साधक को उपदेश देते हैं कि हे साधक! तू गुरु की शिक्षा द्वारा जपमाला सुमिरनी से हरि का जप कर, उसमें मन में विलक्षण स्वाद आएगा —हरि जपि जापु जपमाली गुरमुखि आवै सादु मना ॥1॥ रहाऊ ॥(रागु परभाती बिभास महला 1, चउपदे, घरु 1, सबद 17, ना० वा० पृ० 790) । एक अन्य स्थान पर वे हरि को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे हरि मैं जपमाला सुमिरनी से ऐसा जप करूँ कि सासारिक दुख सुखो का परित्याग कर तेरी निराली भक्ति प्राप्त करूँ—ऐसा जापु जपउ जपमाली। दुख सुख परहरि भगति निराली ॥1॥ रहाउ ॥2॥ (प्रभाती बिभास, महला 1, ना० वा०, पृ० 792)

उपरिलिखित उदाहरणों से यह निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है कि गुरु नानक के काव्य का सार, नाम, नाम जप तथा गुरु की महिमा वर्णन मे ही सन्निहित है। उनकी वाणी का लगभग 5 प्रतिशत अश इनका ही गुणगान करता है गुरु की महत्ता इसी मे है कि वह साधक को नाम प्रदान करे, पुन नाम जप के द्वारा साधक नामी को प्राप्त कर सकता है। अत नानक वाणी का आरम्भ और अत नाम से ही होता है। दूसरे शब्दो मे हम यह भी कह सकते हैं कि नानक वाणी के आदि मध्य और अत म नाम की महिमा ही वर्णित की गई है।

गुरु नानक के पूर्ववर्ती सन्तो ने नाम-जप का वर्णन यथाशक्ति किया है परन्तु जितना विस्तार जितनी अनन्यता, भाव प्रवणता, गरिमा, आग्रहशीलता, बलवती उत्कठा आत्मविभोरता इस सबध म नानक वाणी मे दृष्टिगत होती है, उतनी मात्रा मे ये विशेषताए अन्य स्थानो म प्राय कम प्राप्त होती हैं। विस्तार की दृष्टि से नानक वाणी है ही अनुपमेय। इस सबध मे कही गई पूर्ववर्ती सब सतो तथा

भक्तो की वाणी को यदि एकत्रित कर लिया जाए तो भी गुरु नानक की वाणी उससे कम प्रतीत नही होगी। इतना प्राचुर्य होने पर भी इसमे कही भी पुनरुक्ति नही है। एक ही वात को भिन्न भिन्न ढगो से भिन्न-भिन्न शब्दो मे कहने की वैदग्ध्यता दर्शनीय है पढने वाला कही भी उकताता नहीं, कही भी पुनरुक्ति दोष खटकता नहीं प्रतीत होता। वास्तव मे नानक वाणी नाम का महासागर है जिसमे अवगाहन करके नामी से साक्षात्कार सभव होता है। यदि हम यह कहे कि नानक वाणी नाम-वाणी ही है तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि गुरु नानक ने पजाब की जन-भाषा मे वैदिक काल से चली आ रही नाम जप की परम्परा को उपबृहण करते हुए तथा उसे अक्षुण्ण रखते हुए उसे बलवती, वेगगामिनी तथा जनमनोरजक बनाया।

4

'जाति-पांति पूछै नही कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'

वैदिक काल से कबीर तक

समाज मे साम्यावस्था स्थापित करने के लिए तथा शोषण और उत्पीड़ित का अंत करने के लिए जो सूत्र बनाया गया उसका केन्द्र बिन्दु था हरि या श्रीपति। भक्तो को प्रिय है हरि, उनका सर्वथा सर्वस्व है हरि, हरि को प्रिय है भक्त। एक ही लक्ष्य की प्राप्ति मे सलग्न इन मनुष्यो मे सामजस्य तथा सौहार्द्र होना अनिवार्य है। अतः हरि के भक्तो मे ऊंच नीच के भाव के लिए स्थान कहा क्योकि हरि के लिए सब समान हैं। सभी निर्गुणियो ने दसो दिशाओ मे निनादित किया "जाति पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।" सुगुणियो ने भी डिडम घोष किया कि श्रीपति के दरबार मे कोई भी छोटा नही और कोई भी बड़ा नही।

वास्तव मे यह विचारधारा वैदिक काल मे लेकर कबीर क समय तक निरतर गमन करती आ रही थी। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त मे कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उस विराट पुरुष के शरीर के ही भिन्न-भिन्न अग हैं "इस (विराट पुरुष) के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा पैरो से शूद्र उत्पन्न हुए।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत।
उरु तदस्य य वैश्य पदभ्या शूद्रो अजायत॥ 10/90/12

ऋग्वेद मे जाति शब्द का न पाया जाना इस तथ्य का द्योतक है कि वैदिक काल मे जाति पाति की प्रथा न थी। इस मत की पुष्टि वायु पुराण से होती है।

सत्य युग मे न तो वर्णाश्रम व्यवस्था थी और न ही वर्णसकरता थी। लोग द्वेष से रहित परस्पर वर्ताव किया करते थे। उस समय न तो कोई किसी से उत्तम था और न कोई अधम।

वर्णाश्रमव्यवस्थास्व न तदासन्न सकर.।
अनिच्छाद्वेष युक्तास्ते वर्तयन्ति परस्परम्॥ 8/90/61

महाभारत मे स्पष्ट वर्णन है—वर्णों की कोई विशेषता नही। सारा जगत ही ब्रह्मा का है। ब्रह्माजी से उत्पन्न होने के कारण यह सारा जगत ब्राह्मण ही था, कर्मों के कारण वर्ण भेद पीछे उत्पन्न हुआ है।

न विशेषोऽस्ति वर्णाना सर्वं ब्राह्ममिद जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्ट हि कर्मभिवर्णतागतम्॥ 188/10 शान्ति पर्व

वैदिक काल वास्तविक रूप से जनतन्त्र तथा विशुद्ध साम्यवाद का युग था। 'विश्' पद इस तथ्य का सूचक है कि सामूहिक रूप से जनता अपने आप को सामान्य जन समझती थी क्योंकि विश् का अर्थ है आर्य प्रजा। उस समय का प्रत्येक व्यक्ति स्वय राजा, योद्धा और पुरोहित था। इसीलिए यजुर्वेद तथा अथर्ववेद मे कामना की गई है कि हे शोभा और दीप्ति के निधान परमेश्वर! आप हमारे ब्राह्मणो मे दीप्ति को धारण कीजिए। क्षत्रियो को दीप्तिमान कीजिए वैश्यो और शूद्रो को दीप्ति युक्त कीजिए। मुझे सदा दीप्तिमान कीजिए।

रुच नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच राजसु मस्कृधि।
रुच विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुजम्॥ 18/48

हे भगवान! मुझे देवो मे अर्थात् विद्वानो मे प्रिय बनाइए। मुझे क्षत्रियो मे प्रिय बनाइए। मुझे शूद्रो और वैश्यो तथा अन्य सब प्राणियो मे भी प्रिय बनाइए।

प्रिय मा कृणु देवेषु प्रिय राजुस मा कृणु।
प्रिय सर्वस्व पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥19/62/1

हे ईश्वर! ऐसा बनाइए कि कल्याण करने वाली इस वाणी को मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अर्थात् सारी जनता के लिए कह सकू।

यथेमा वाच कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च॥ यजु० 26/2

इन वेद मत्रो से निसृत भावना कितनी सार्वभौम व्यापक बहुजनहिताय तथा उदात्त है। सकीर्णता का लेश मात्र भी दृष्टिगत नही होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सब समान थे।

महाभारत मे भीष्म पर्व मे बताया गया है कि जाति गुण और स्वभाव पर आधृत थी न कि जन्म पर। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्म उनके गुण और स्वभाव के अनुसार पृथक्-पृथक् किए गए हैं।

ब्राह्मण क्षत्रिय विशा शूद्राणा च परतप।
कर्माणि प्रविभानि स्वभाव प्रभवे गुणै॥42/41

महाभारत मे वन पर्व मे स्पष्ट किया गया है कि गुणो के कारण ही ब्राह्मण ब्राह्मण माना जा सकता है अन्यथा वह शूद्र है —

"यदि शूद्र मे सत्य आदि उपर्युक्त लक्षण हैं और ब्राह्मण म नहीं हैं तो वह शूद्र शूद्र नही है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नही है। जिसमे ये सत्य, दान, अक्रोध,

क्रूरता का अभाव, अहिंसा और दया आदि लक्षण हों, वह ब्राह्मण माना गया है और जिसमें इन लक्षणों का अभाव हो, उसे शूद्र कहना चाहिए।

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेत् शूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्॥ 140/25-26

लिंग पुराण इस मत का समर्थन करता हुआ प्रतिपादित करता है विश्वात्मा ने अपने ही तेज से स्वभावानुसार जीवनोपाय के लिए वर्णों और आश्रमों की प्रतिष्ठा की।

वर्णाश्रम प्रतिष्ठां च चकार स्वेन तेजसा।
वृत्तेन वृत्तावृत्त विश्वात्मका निर्ममे स्वयम्॥ 29/50

मनु जी ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है —

उस महा तेजस्वी ब्रह्मा ने इस सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिए ब्राह्मण (मुख) क्षत्रिय (बाहु) वैश्य (उरु) और शूद्र (पैर) के पृथक्-पृथक् कर्मों की सृष्टि की।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्य कल्पयत्॥ 2/81

बृहदारण्यकोपनिषद् का कथन भी अवेक्षणीय है वह ब्रह्म ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुआ और मनुष्यों में ब्राह्मण ही क्षत्रिय कर्म से क्षत्रिय, वैश्य कर्म से वैश्य, तथा शूद्र कर्म से शूद्र हुआ।

तदेतद्ब्रह्मक्षत्रं विट्शूद्रस्तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवद्।
ब्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रियेण क्षत्रियः वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रः॥ 1/4/15॥

जाति का आधार गुण और कर्म थे न कि जन्म।

महाभारत, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण आदि में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बने तथा वैश्य ब्राह्मण बने। उदाहरण के लिए गृत्समद के पुत्र शुनक जी हुए जिनसे शौनक वंश का विस्तार हुआ और शौनक वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र उत्पन्न हुए।

पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः॥7॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च॥

(हरिवंश पुराण—हरिवंश पर्व 29/7 8)

वर्णव्यवस्था में, जन्मानुसारणी बन जाने पर संकीर्णता का प्रवेश हुआ। मानव मन इस बात को देखकर तिलमिलाता रहा है कि ब्राह्मण का पुत्र दुराचारी होने पर भी ब्राह्मण ही माना जाता है तथा सदाचारी शूद्र पुत्र ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं बनता। जबकि ब्राह्मण या शूद्र के घर में जन्म लेना ऐसी घटना है जिस पर किसी का वश नहीं। इसीलिए जैन तथा बौद्ध मतों में जातिवाद का

खण्डन किया गया। कबीर के पूर्ववर्ती सिद्धो, हठयोगियो तथा नाथो ने भी जाति प्रथा पर तीव्र प्रहार किए। सरोरुहपाद ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर व्यग्य करते हुए कहता है, "ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे। इस समय तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे दूसरे लोग, तो फिर ब्राह्मणत्व कहा रहा। यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मणत्व होता है तो चाण्डाल को भी सस्कार देकर क्यो नही ब्राह्मण हो जाने देते।"

कबीर के आविर्भाव काल का निर्णय अन्तस्साक्ष्य, साम्प्रदायिक सामग्री, तथा प्राचीन ग्रथो एव विद्वानो के मतव्यो के अनुसार करने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया है 'कबीर चरित्र बोध' के अनुसार उनका जन्म 1455 वि० मे हुआ तथा मेकालिफ, हटर, वील, फुर्कहर इनका जन्म क्रमश ई० 1398, 1300, 1490, 1400 ई० मे हुआ मानते हैं। भण्डारकर, स्मिथ, तथा वेसकट 1440 ई० को उनकी जन्म-तिथि समझते हैं।

उनके निर्वाण काल के विषय मे निम्नलिखित मत प्रचलित हैं :—

1. सुमत पद्रा सो उनहत्तरा हाई,
   सतगुर चले उठ हसा ज्याई।

2 पद्रह से उनचास मे मगहर कीन्हो गौन।
   अगहन सुदि एकादशी मिले पौन मे पौन॥

3 सवत् पद्रह सैपछहतरा कियो मगहर को गौन।
   माघ सुदि एकादशी रली पौन मे पौन॥

इस प्रकार 1569, 1549, 1575 वि० स० इनके अवसान काल की तिथिया वर्णित की गई हैं। सिकन्दर लोधी ने कबीर को कई बार मृत्यु दण्ड से पीडित किया—ऐसा प्राय सर्वसम्मत है। अत इस आधार पर कबीर का जीवन काल स० 1490 से लेकर 1569 तक निर्धारित किया जा सकता है।

कबीर शब्द प्राय अरबी का माना जाता है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ या महान। आचलिक भाषाओ मे कबीर उस काव्य को कहते हैं जो होली के अवसर पर गाया जाता है। इस अर्थ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी काव्य—कव्वि—कवि+डा। इस शब्द का प्रयोग फरीद के 'पदि नामा' मे इसी अर्थ मे मिलता है। नामदेव की हिन्दी पदावली मे कबिरा शब्द उस युग के लावनी बाजो के ढग के आशु कवि गायकों के लिए किया गया है। कबीर शब्द विशेषण के रूप मे कबीर द्वारा प्रयुक्त हुआ है जहा इसका तात्पर्य है श्रेष्ठ तथा महान। ऐसे सदर्भो मे कबीर अपने को ब्रह्म कहते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

ना कछू कीया न करि सका,
ना करणे जोग सरीर।

जे कछु कीया सु हरि कीया
तार्थे भया कबीर कबीर।

कबीर के आविर्भाव काल तक यावनी शासन की नीव पर्याप्त रूप से सुदृढ हो चुकी थी। राज्य शक्ति का आश्रय पाकर इस्लामी विचारधारा को फैलने का अवसर प्रचुर मात्रा मे विद्यमान था और सभी राजनैतिक बाधाओ का प्राय निरसन हो चुका था। यवन शासक तलवार द्वारा तथा सूफी सन्त प्रेम द्वारा इस्लाम के प्रसार को गतिमान कर रहे थे। इस्लाम ने पूर्व तत्कालीन जनमानस वैदिक तथा अवैदिक विचारधाराओ से जो सहस्रो वर्षों से सचरणशील थी आप्यायित हो चुका था। उन जन्म जन्मातरो से प्राप्त सस्कारो को छोडने मे वे अशक्य थे। ऐसे समय मे भक्ति रूपी मदाकिनी को द्रविड देशो स लेकर कबीर रामानद उत्तर भारत मे अवतरित हुए। इस प्रकार कबीर सरलता से आर्य तथा अनार्य अर्थात् वैदिक औपनिषदिक, पौराणिक वैष्णव, शैव, बौद्ध जैन, शक्ति सिद्ध, नाथ तथा इस्लामी विचारधाराओ को आत्मसात करने मे सक्षम हुए।

कबीर अपनी सूक्ष्मेक्षिका अन्तर्दृष्टि द्वारा समझ गए कि मानव-कल्याण के मार्ग मे सबसे बडी बाधा है ऊच नीच की भावना। जब तक इस घातक, सर्वहारा तथा सर्वव्याप्त निकृष्टम मनोवृत्ति का समूल नाश नही होगा, समाज म सामजस्य तथा सतुलन का अभाव रहेगा। फलस्वरूप असतोष, उत्पीडन, शोषण तथा अत्याचार की प्रचण्ड अग्नि मे समाज जलता रहेगा।

पूर्वकालीन जाति-खण्डन की दीर्घ परम्परा का अनुसरण करते हुए कबीर ने कुलाभिमान तथा जात्याभिमान को भक्त के लिए प्रमुख बाधा माना। वे कहते हैं कि पण्डित वेदादि ग्रन्थ रट-रटकर भी भ्रम मे पडा हुआ है क्योकि वह तत्वमसि, अह ब्रह्मास्मि आदि सिद्धान्त वाक्यो का अर्थ समझ ही नही सका। उसे अपने गुणो पर बहुत घमण्ड है। अतिदर्प सारा पतन का कारण बना। भगवान का विरुद गर्वभजक है गर्वीले व्यक्ति से वह विमुख हो जाता है अत कुल तथा जाति का अभिमान त्यागकर निर्वाण पद की प्राप्ति के लिए यत्नशील होना चाहिए। निष्काम कर्म करने से ही मुक्ति प्राप्त होती है। जब बीज अकुर रहित नष्ट हो जाता है तभी विदेही मुक्ति मिलती है। 'पण्डित भूले पढि गुनि बेदा। आपु अपनपौ जानन भेदा।

अति गुन गरब करै अधिकाई। अधिक गरबहि न होई भलाई।
जासु नाम है गरव प्रहारी। सो क्स गरबहि सकै सहारी।
कुल अभिमान विचार तजि खोजो पद निरवान।
अकुर बीज नसाइया, तब मिलै विदेही थान॥

इसीलिए कबीर के गुरु ने सबसे पहले जाति-पाति मे गर्व का खण्डन किया। कबीर कहता है, 'मेरा गुरु वास्तविक रूप से महान था क्योकि वह आटे मे नमक

डाला गया जिसके परिणामस्वरूप मेरे जाति-पाति कुल सब मिट गए अत अब उनने कौन से नाम रखोगे ?"

कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूण।
जाति पाति कुल सब मिटे, नाऊ धरोगे कोण॥

ऊचे कुल का कोई महत्व नही रह जाता यदि करनी ऊची नही है। सोने का घडा यदि शराब से भरा है तो महात्माओ द्वारा वह निंदा के योग्य ही होगा

कबीर ऊचे कुल कया जनमिया
जे करणी ऊच न होई।
सोवन कलस सुरै भर्या
साधो नीधा सोइ॥

कुल तो वह भला है जिसम हरि का भक्त या दास उत्पन्न हुआ हो। जिस कुल मे हरि का दास उत्पन्न नही हुआ वह उच्च कुल भी आक और पलाश के समान व्यर्थ ही है।

कबीर कुल तो सो भला, जिहि कुलि ऊपजै दास।
जिहि कुलि दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास॥

कबीर के लिए सदाचारी चाडाल वैष्णव सम पूज्य है जबकि दुराचारी शाक्त ब्राह्मण होने पर भी त्याज्य है।

कबीर सालित, ब्राह्मण मति मिलै, बैसनौ मिलै चडाल।
अक माल दे भेंटियें, जानू मिले गोपाल॥

कबीर दुराचारी वैष्णव को हेय तथा उपेक्षणीय मानते है।

ससारी शाक्त यदि कुमारी के भाव का अर्थात चरित्रवान हो, तो वह भला है, सेवनीय है परन्तु यदि कोई वैष्णव होने पर दुराचारी है तो हरिजन वहा उसके निकट तक न जाए।

कबीर ससारी सायत भला, कवारी के भाइ।
दुराचारी बैश्नौ हरिजन तहा न जाइ॥

जाति पाति का भेद निरर्थक है क्योकि सब मानव पच तत्व के पुतले हैं जिनमें उस एक ने ही निवास कर रखा है। पच तत्व मे विखण्डित होने पर यह सब वही सहज रूप मे समा जाता है। जल मे कुभ है और कुभ मे जल है, वह ही उसके बाहर है तथा भीतर भी है, घडा जब फूट जाता है तो जल मे ही समा जाता है।

पच तत अवगति थै उतपना, एकै किया निवासा।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाने, रेख रही नहीं आसा॥
जल मे कुभ कुभ मे जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुभ जल जलहि समाना, यहु ततु कथौगियानी॥

इसी तथ्य को दुहराते हुए कबीर कहते हैं कि मैंने तो उस एक तत्व को एक

ही करके जाना है, जो दो कहते हैं उनको नरक मिलेगा क्योंकि उन्होंने उसको पहचाना नहीं है। एक ही पवन, एक ही पानी और एक ही ज्योति संसार में है, एक ही मिट्टी से समस्त भाड निर्मित हुए हैं और सबका निर्माता भी एक ही है—

हम तो एक एक करि जाना।
दोइ कहै तिन ही का दो जग, नाहिन पहचाना।
एक पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।
एक ही खाक घडे सब भाडे, एक ही सिरजन हारा॥

किसी को ब्राह्मण कहना किसी को शूद्र कहना यह न तो तर्क सम्मत है न संगत क्योंकि सब एक ही ज्योति से उत्पन्न हुए हैं —

एक-एक ज्योति थे सब उतपना कौन ब्राह्मण कौन सूद्रा।
माटी एक भेप धरि नाना, सब मे ब्रह्म समाना॥

वैदिक परम्परा का अनुसरण करते हुए कबीर सामाजिक विषमताओं को प्रोत्साहन देने वाले तत्वों का स्मरण करवाते हुए कहते हैं कि आदि में केवल एक आकार ही था राजा तथा प्रजा सबका मूल यह आकार ही है हम तुम में एक ही लहू है, एक ही प्राण तत्व हैं।

औ ओंकार आदि है मूला। राजा परजा एकहि मूला॥
हम तुम्ह माहे एकै लोहू। एकै प्रान जीवन है मोहू॥

स्पष्ट है कि कबीर अपने समय की सामाजिक विषमताओं से उत्पन्न सारी समस्याओं का समाधान एक मात्र जाति-पाति भेद के निरसन मे मानते थे। भक्त होने के नाते उन्होंने प्रत्येक मानव का सम्बन्ध हरि से जोडते हुए उसे आपसी भेद भाव भुलाकर सामजस्य तथा सौहार्द भाव से रहने के लिए प्रेरित किया। जाति-पाति पूछै नहि कोई हरि को भजै हरि का होई में निहित सत्य जितना उनके युग के लिए सार्थक था उतना बल्कि उससे अधिक यह आजकल के त्रस्त तथा दिग्भ्रमित समाज के लिए वरेण्य है।

5
लोक (जन) साहित्य और इसकी महत्ता

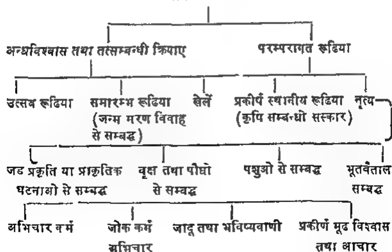
सभ्य जातियो की असस्कृत श्रेणियो के परम्परामुक्त ज्ञान अथवा साहित्य को अभिहित करने के लिए श्री डब्ल्यू० जे० थोमस (W J Thomes) ने 1846 मे फोक लोर (Folk-lore) पद का आविष्कार किया। यह पद ससार की बहुत-सी अन्य भाषाओ मे इन अर्थों को प्रकट करने के लिए अनूदित किया गया। हिन्दी मे इसका पर्यायवाची लोकवार्ता निर्मित किया गया। जर्मन पद फोक्स कण्ड (Volks kunde) और फोक लोर के अर्थों म पर्याप्त भेद है क्योकि जर्मन पद सूचित करता है (Lore about the folk) लोक विषयक वार्ता को जबकि फोक लोर सकेत करता है लोक द्वारा निर्मित वार्ता (Lore of the folk) को। फोक लोर (Folk-lore) का अभिप्राय उस विज्ञान से भी है जो लोकवार्ता सम्बन्धी अनुसधान को समाहित करता है।

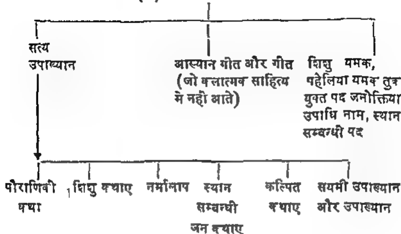
योरूप मे इतिहास—लोकवार्ता का वैज्ञानिक अध्ययन योरूप मे उन्नीसवी शती के प्रथम चतुर्थांश में आरम्भ हो चुका था परन्तु इससे बहुत पहले इसको एकत्रित किया जा रहा था। व्यवस्थित रूप से इसका चयन पिछली शती के उत्तरार्द्ध मे ही किया जाने लगा। 1878 ईस्वी मे प्रथम लोकवार्ता समिति की स्थापना लन्दन मे हुई। तत्पश्चात् ऐसी समितियो का बीज वपन अमेरिका फ्रास, इटली स्विटजरलैंड विशेषत जर्मनी और आस्ट्रिया मे किया गया। लोक कहानिया साहित्य में अत्यत प्राचीन काल से ही उपलब्ध होती है। ईसा से 2800 वर्ष पूर्व मिस्री साहित्य मे लोक कहानिया प्राप्त होती हैं, यूनान मे होमर की कविताओ मे कई लोक कहानियो से सम्बद्ध घटनाए वर्णित हैं, भारत मे जातको और पञ्चतन्त्र मे लोक-कहानियो का समावेश है, अरबो की सहस्ररजनी ऐसी कथाओ का सग्रह मात्र ही है। ईसप की कथाए एक प्रकार से लोक-कहानियो का ही रूप हैं। इनके प्राचीनतम सग्रह जे० बी० थायरज (1606-1703) ने ट्रेट डज सुपरस्टीशनज (Trait des superstitions) मे (1679 मे) औ ब्रेने (Aub

ey's Miscellanies) मिसक्लीनीज़ मे 1686) मे और एच बूर्नेज मे (H Bourne's Antiquitates vulyares) (1696-1733) एण्टिक्विटेट्स वल्गेरस मे 1725 मे एकत्रित किये। परन्तु ये सब अवैज्ञानिक युग की रचनाए हैं।

ग्रिम भाइयो ने अपनी किन्डर अण्ड होउसमारखन (Kinde Und Hausmarchen) 1812-15 और डियूश माइथोलोजी (Deutsche Mythologie) 1835 शीर्षक युक्त रचनाओ द्वारा लोकवार्त्ता के आधुनिक वैज्ञानिक प्रतिपादन की नीव डाली। उन्होने ही सर्वप्रथम लोककथा को अपने वास्तविक अकृत्रिम रूप मे जनता के समक्ष रखा। परन्तु उन्होने भाषा विज्ञान को अपनी कार्यप्रणाली मे अधिक मात्रा मे नियोजित किया। अतएव उनके उत्तरवर्ती लेखको, जिनमे से प्रमुख जे० डब्ल्यू० वुल्फ (J W Wolf) और डब्ल्यू रोक होल्ज (W Rochholz) ने भी इसी प्रवृत्ति को अतिशय रूप से अपनाया। डब्ल्यू० मन्नहार्ट W Mannhardt) भी आरभ मे इसी गलती का शिकार हुआ परतु आगे चलकर उसने मानव शास्त्रीय (Anthopological) परिपाटी का प्रचलन किया। इग्लैंड मे इस विचारधारा को श्री एण्ड्रियु लैंग (Andrew Lang) डा० जे० जी० फ्रेजर तथा प्रोफेसर रोबर्टसन स्मिथ (Robert son Smith) ने अपनी कृतियो द्वारा विशेष रूप से समृद्ध किया।

उप विभाजन—लोकवार्त्ता को हम आसानी के साथ तीन मुख्य विभागो मे बाट सकते हैं जैसे (1) विश्वास और रूढिया, (2) आख्यान और प्रवाद, (3) कला।





(3) कला

जन संगीत (आख्यान गीतों तथा गीतों के साथ) | जन नाटक

यह विभाजन और उपविभाजन पूर्णतया ठीक नहीं माना जा सकता क्योंकि बहुत से अंश जो परस्पर सम्बद्ध हैं यहां पृथक्-पृथक् करके लिखे गये हैं जैसे पौराणिकी कथाएं किसी न किसी अन्धविश्वास को ही सूचित करती हैं, इसी प्रवाद परम्परागत आख्यान कला शीर्षक के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

हिन्दी का लोक साहित्य अंग्रेजी (Folk Literature) का पर्यायवाची है। जहां तक लिट्रेचर (Literature) के पर्यायवाची साहित्य का सम्बन्ध है। इस पर सब सहमत हैं परन्तु फोक (Folk) के अनुवाद के विषय में पर्याप्त मतभेद है। कई इसके लिए लोक शब्द उपयुक्त मानते हैं और कई जन। 'जन' शब्द के समर्थक इसकी पुरातन परम्परा तथा ऐतिहासिक आधार की ओर इंगित करते हुए इस शब्द की उपयुक्ता पर बल देते हैं। वैदिक साहित्य में जन शब्द सब मनुष्यों (मानव समाज) के लिए प्रयुक्त हुआ है जैसे "इस कल्याणी वाणी का उपदेश करता हूं जनों के लिए। वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य सबंधी और अतिशूद्रों के लिए भी (तुम लोग उपदेश करो)।"

(यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य।) ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च। स्वाय चारणाय च॥ (यु० जु० 26/2।)

इसी प्रकार सस्कृत एव पालि ग्रथो से इस अर्थ की पुष्टि होती है। बुद्ध के उपदेश 'बहुजन हिताय' तथा 'बहुजन सुखाय' होते थे। ग्रामो के समुदाय को ही प्राचीन परिभाषा मे जनपद कहा गया है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने जनपद की निम्न ढग से व्याख्या की है—

"वह भौमिक इकाई जिसमे बोली और जनसस्कृति की दृष्टि से जनता मे पारस्परिक साम्य अधिक है, जनपद कही गई है।" (पृथिवीपुत्र पृ० 70-71) धीरे-धीरे आर्य जनो की राष्ट्रीय भूमिधा जनपद कहलाने लगी। आगे चल कर बौद्ध काल मे महाजनपद विकसित हुए जिनका अस्तित्व साम्राज्यो के स्थापित हो जाने पर ही लुप्त हुआ।

जन और जन-साहित्य शब्दो का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। श्री कृष्णानन्द गुप्त ने 1944 मे 'लोकवार्त्ता' पत्रिका के पहले अक के पृष्ठ 2 पर इसका प्रयोग किया। राहुल साकृत्यायन ने लोक-साहित्य के स्थान पर जन-साहित्य शब्द प्रयुक्त किया है। उनकी पुस्तको मे गढवाली तथा कमाउनी गद्य-पद्य के लिए 'जन-साहित्य परिचय' (हिमालय 1—अध्याय 12, पृ० 490 तथा कुमाऊ परिशिष्ट 4, पृ० 345) किन्नर गीतो के लिए 'जन गीत' तथा सुगीत के लिए 'जन सगीत' ('किन्नर देश' किन्नर गीत, पृ० 316, 318) आदि प्रयोग प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार इन्होने जन-कथा, जन-भाषा आदि शब्दो का व्यवहार किया है डा० दशरथ ओझा ने अपनी पुस्तक "हिन्दी नाटक साहित्य का उद्भव और विकास" मे जन-नाटक शब्द प्रयुक्त किया है। 'हिमालय की लोक-कथाए' नामक पुस्तक मे जन-साहित्य शब्द का प्रयोग भी इस सदर्भ मे द्रष्टव्य है। पजाब के हिन्दी भाषा विभाग ने अपनी एक मासिक पत्रिका का नाम 'जन-साहित्य' रखा है।

जन शब्द के विरोधी विद्वानो ने लोक-साहित्य और जन-साहित्य मे पर्याप्त अन्तर स्थापित किया है। जनपद (खण्ड 1, अक 2, पृ० 63, 44) मे लिखा है "जन-साहित्य औद्योगिक क्राति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका मे प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। लोक-साहित्य जहा जनता के लिए जनता के ही द्वारा रचित साहित्य है, वहा जन-साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है···लोक-साहित्य मे रचयिता व्यक्ति जन-समूह का माध्यम मात्र है जबकि जन-साहित्य मे रचयिता व्यक्ति का अपना वैशिष्ट्य है···जन-साहित्य का ढाचा भी लोक-साहित्य से भिन्न होता है, वह लोक-साहित्य की तरह मौखिक नही होता, बल्कि प्रेस द्वारा मुद्रित और प्रकाशित होता है। 'जन-साहित्य' शिष्ट व्यक्ति द्वारा रचा हुआ वह साहित्य है जो सह सवेदना के फलस्वरूप सामान्य जन के लिए अभिव्यक्त होता है।" हिन्दी साहित्य कोश के पृ० 692 पर डा० सत्येन्द्र ने इस पार्थक्य को शक्तिशाली शब्दो मे इस प्रकार घोषित किया है,

"जन लोक-साहित्य जन साहित्य से एकदम भिन्न है। जन-साहित्य जन साधारण का साहित्य है। जन-लोक की अपेक्षा अधिक सुगठित और निजी सत्ता के प्रति चैतन्य समूह है और बहुधा राजनीतिक पृष्ठभूमि के साथ होता है" यह लोक-साहित्य की भांति सहज स्वाभाविक और कर्तव्य भाव से रहित नही हो सकता।"

स्पष्ट है कि जन शब्द जब अपने पुराने अर्थ मे प्रयुक्त नही किया जाता तो इसका सम्बन्ध राजनीतिक दलो से होने के कारण बहुत सकुचित हो जाता है। श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने साहित्य कोष के पृष्ठ 300 पर इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है, "वर्तमान समय मे कुछ राजनीतिक पार्टियो ने इस शब्द का गलत प्रयोग किया है। उनके अनुसार उनकी पार्टी जनता की पार्टी है और जिस कवि का सम्पर्क उनकी पार्टी से हो वही जन कवि हैं।" आगे चल कर 303 पृष्ठ पर वे फिर कहते हैं "" हर एक साहित्य जन-साहित्य नही हो सकता। जन-साहित्य बनने के लिए समाज की आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ेगा, किन्तु वर्तमान समय मे राजनीतिक दलो ने जन-काव्य की जो दुर्दशा की है वही दुर्दशा जन साहित्य की भी हुई है। प्रगतिशील साहित्य को ही कुछ लोग जन-साहित्य मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। साहित्य मुक्त और निर्बंध आत्मा का स्वर है जन साहित्य का सम्पर्क सामाजिक हित और कल्याण से है, न कि दल विशेष से" प्राचीन भाव की सुरक्षा करते हुए डा० रामविलास शर्मा साहित्य कोश के पृष्ठ 303 पर कहते हैं, "हर युग मे श्रेष्ठ कवि और काव्य को जनवादी माना गया है, चाहे वे वाल्मीकि, व्यास और कालिदास हो अथवा कबीर, सूर, तुलसी या मीरा हो।" वे आधुनिक काल मे जनवादी धारा के प्रारम्भकर्ता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को मानते है।

पाश्चात्य विद्वानो ने भी लोक शब्द को सकुचित घेरे मे बाध रखा है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, लूसी गार्नेट, जार्ज हर्जेग, रावर्ट ग्रेव्ज, फ्रैंक सिजविक, फासिस गुमेर, विशप पर्सी, जान लोमेक्स, लूसी पौंड प्रभृति विद्वान् फोक शब्द से उस समूह को अभिहित करते हैं जिसमे नगर की सास्कृतिक, आर्थिक और शिक्षामूलक विविधता कम अभिव्यक्त होती है। इस साहित्य मे उनके अनुसार मनुष्य की आदिम अवस्था की अभिव्यक्ति होती है। इसका विरोध करते हुए डा०सत्यव्रत सिन्हा ने 'भोजपुरी लोकगाथा', नामक पुस्तक की भूमिका 'च' मे कहा है,' "हमारा लोक पाश्चात्य देशो का लोक नही है अपितु देश की समूची सस्कृति एव सभ्यता ही हमारी लोक-सस्कृति एव लोक-सभ्यता है।" इस प्रकार लोक साहित्य के कई अर्थ हो सकते हैं जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित हैं: (1) इस लोक का साहित्य, जो सभ्यताओ की सीमा से बाहर है (2) वह साहित्य जो लोक मनोरजन के लिए लिखा गया हो अर्थात् इस लोक के लिए जो विशेष

पढ़ा लिखा नहीं। (3) जंगली जातियों का साहित्य (4) ग्रामीण साहित्य। (5) वह साहित्य जो परम्परा से हमें मौखिक रूप से प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार लोक शब्द के व्यापक अर्थों में से एक अस्पष्टता झलकती है। फिर भी 1942 में सूर्यकरण पारीक ने अपनी 'राजस्थानी लोक-गीत' नामक पुस्तक में पृष्ठ 9 पर लोक शब्द का प्रयोग ही उचित समझा।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक के स्थान पर ग्राम शब्द का प्रयोग उचित ठहराया। अतएव उन्होंने फोक लिटरेचर (Folk Literature) के लिए ग्राम साहित्य तथा फोक सौंग (Folk Song) के लिए ग्राम गीत शब्द प्रयुक्त किया। कारण बताते हुए उन्होंने कहा कि गीत ग्राम की सम्पत्ति हैं। शहरों में तो वे गए हैं, जन्मे नहीं, फिर गावों का यह गौरव उनसे क्यों छीना जाए ? (कविता कौमुदी पाचवा भाग-ग्रामगीत—पृ० 76, 77, 78) परन्तु ग्राम शब्द का प्रचलन बहुत नहीं हुआ—कदाचित् अपने अर्थ संकोच के कारण। इसके विपरीत लोक शब्द का प्रसार मराठी और गुजराती में भी हो चुका था। कुछ समय तक दोनों शब्द एक साथ चलते रहे पर अंत में ग्राम गीत का अर्थ गावों के गीत किया जाने लगा।

निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि उन समस्त परम्परा से प्राप्त मौखिक तथा लिखित रचनाओं की समष्टि को हम लोक या जन साहित्य पद द्वारा अभिहित कर सकते हैं जो किसी एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्मित होते हुए भी आज सामान्य जनसमूह का अपना कृतित्व माना जाता है, जिसमें किसी जाति, समाज या एक क्षेत्र में रहने वाले सामान्य लोगों की परम्पराएं, विशेष प्रवृत्तियां आचार-विचार, रीति, नीतियां, वाणी विलास इत्यादि निहित हैं। ऐसा साहित्य सहज नैसर्गिक तथा मानव हृदय की भावनाओं से सीधा सम्बन्ध रखता है। वे सारी अभिव्यक्तियां व्यापक रूप से इसमें आ जाती हैं जिनमें जन-मानस प्रतिबिम्बित रहता है।

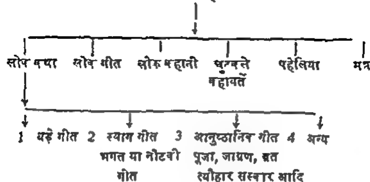
लोक वार्ता से सम्बन्ध यूरोप में फोक लिटरेचर को फोक लोर का एक अंग माना गया है। इस साम्य के आधार पर ही हिंदी में लोक-साहित्य को लोक वार्ता का अंग कहने की प्रथा का सूत्रपात हुआ। यह धारणा कहां तक उपयुक्त है इस तथ्य को जानने से पहले लोक-वार्ता की निम्नलिखित प्रमुख प्रवृत्तियों को जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है (1) इसकी मुख्यत मौखिक या अलिखित सामग्री होती है। (2) तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति को इसमें अपनाया जाता है। (3) इसमें प्रथाओं, विश्वासों और परम्पराओं आदि का अध्ययन किया जाता है। (4) इसमें निम्नलिखित विषय समाहित किये जा सकते हैं (क) गीत कथा, गाथा पहेलियां, मुहावरें बालरचनाएं (ख) रीतिरिवाज, त्योहार, अनुष्ठान, व्रत, आदि का अध्ययन (ग) जादू टोना, टोटका, भूत प्रेत विषयक धारणाएं (5) गृह

शिल्प, उपयोगी एवं ललितकलाएं तथा इतिहास, समाज शास्त्र, मनोविज्ञानादि। (6) यह एक निश्चित विज्ञान या शास्त्र है तथा इसमें कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं। इसका कला पक्ष भी पर्याप्त पुष्ट है। (7) नैसर्गिक और आदिम अभिव्यक्तियों का समूह होने के साथ साथ यह एक गतिशील शास्त्र भी है। (8) इसमें व्यापक रूप से मानव-संस्कृति और विशेष रूप से लोक-संस्कृति के सभी पक्षों पर विचार किया जाता है।

लोक वार्ता के तत्वों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पर्याप्त मात्रा में अवगत हो जाता है कि लोक साहित्य से बहुत मात्रा में साम्य होने पर भी व्यापकत्व तथा उद्देश्य की भिन्नता की दृष्टियों से इनमें भेद भी न्यून नहीं है। अत एव लोक साहित्य को लोक-वार्ता का अंग कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि लोक-साहित्य का स्वतन्त्र अस्तित्व है अभिव्यक्ति का अध्ययन का लक्ष्य स्वतन्त्र है और कसौटी भिन्न है। उनके पारस्परिक सम्बन्ध से प्रतीत हो जाता है कि एक दूसरे का अंग नहीं अन्यथा इतिहास, पुरातत्व समाजशास्त्र, आदि भी लोकवार्ता के अंग माने जाने चाहिए।

लोक साहित्य का उद्भव सी० एम० बर्न ने अपनी पुस्तक "दि बुक ऑफ फोक लोर" (The hand book of Folk lore) के 271वें पृष्ठ पर कहा है कि लोक गीत की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई जबकि आदि मानव ने अपने स्वर को पशुओं के स्वर से अधिक शक्तिशाली देखा। उसके आधार पर यह विश्वास पुष्ट हुआ कि अन्य प्राणियों की तुलना में भी उसका स्वर शक्तिशाली है। पेरी के अनुसार लोक गीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में निवास करते हुए जब मानव में थोड़ी, बुद्धि और उसके आधार पर भावनाओं के अंकुर फूटे तो उन्हें व्यक्त करने के लिये उसने विकृत अलाप लेना आरम्भ किया। यही आदि संगीत उसके शब्दों में लोक गीत है। ('नया पथ' के लोक साहित्य विशेषांक —1956-57 के 142वें पृष्ठ से उद्धृत) देवेन्द्र सत्यार्थी की पुस्तक 'Meet my People के 194वें पृष्ठ पर इस मान्यता की पुष्टि इन शब्दों में की गई है कि लोक गीतों के बीज जातीय संगीत में विद्यमान रहते हैं। निश्चय ही लोक साहित्य निश्छल मानव हृदय से निसृत नैसर्गिक अभिव्यक्ति का परिणाम है। अपने सामयिक वातावरण से प्रभावित होकर मानव अपनी आदिम अवस्था से लेकर आज तक अकृत्रिम भाव से तथा बिना किसी साज-सज्जा के अपने उद्‌गारों को किसी-न-किसी रूप में प्रकट करता आया है तथा करता रहेगा। इसीलिए लोक-साहित्य का सृजन भी होता रहता है और होता रहेगा। यही साहित्य कवियों का, लेखकों तथा कलाकारों का उपजीव्य बनता है और उन्हें प्रेरणा देता है।

लोक साहित्य का विभाजन . डा० सत्येन्द्र ने हिन्दी साहित्य कोश के 692 वें पृष्ठ पर लोक-साहित्य को निम्नलिखित ढंग से बांटा है :—



संक्षिप्त परिचय

लोक गीत—लोक गीत शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं। (1) लोक में प्रचलित गीत (2) लोक निर्मित गीत (3) लोक विषयक गीत। लोक में प्रचलित गीत ही वास्तविक रूप से लोक-गीत कहे जा सकते हैं। परन्तु इसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। परन्तु फिर भी वह लोक-मानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी वस्तु कहने लगता है। वही गीत लोक का अपना गीत बन जाता है तथा परम्परा में पड़कर समय के अखण्ड प्रवाह में बहता चलता है, समय-समय पर लोक मानस उसमें परिवर्तन करता जाता है। डा० त्रिलोचन पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'कुमाऊ का लोक-साहित्य' के 75वें पृष्ठ की सारणी में कुमाउँनी लोक-गीत का वर्गीकरण निम्नलिखित ढंग से किया है। *यह विभाजन अपने मुख्य अंशों में सभी प्रकार के लोक-गीतों पर लागू किया जा सकता है* —

लोक गीत

मुक्तक गीत
सस्कार गीत
ऋतु गीत
कृषि गीत
देवी देवता व्रत त्योहार के गीत
बाल गीत

नृत्य प्रधान
अनुभूतिप्रधान
तर्क प्रधान
बैर
स्फुट
सवाद प्रधान

स्त्री पुरुष
पुरुष
स्त्री
अनिवार्य
विशेष

प्रेमी प्रेमिका
पति पत्नी
भाई बहिन

विवाह सबधी
जन्म सबधी
व्रतबध सबधी

पितापुत्र
भाई भाई
मित्र आदि

मां बेटी
सास बहू
देवराणी जेठानी
ननद भाभी
स्त्रिया आदि

लोक कथा —साधारणतया कथा शब्द कहानी का पर्यायवाची समझा जाता है परन्तु 'रामायण की कथा' 'महाभारत की कथा' 'सत्यनारायण की कथा' मे प्रयुक्त कथा शब्द का अभिप्राय ऐसी वार्ता से प्रतीत होता है जो किसी के द्वारा कह कर सुनाई जाती है तथा जिससे श्रोतागण धर्म लाभ करते हैं। अत कथा वह कहानी है जो धार्मिक अभिप्राय से अनुष्ठान के साथ सुनाने के लिए हो। इसका किसी न किसी रूप मे धर्मगाथा या पुराण कथा स सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार की पूजा-कहानिया भी होती है जिनका सम्बन्ध प्राय स्त्रियो के त्योहारो से होता है।

लोक कहानी —मूलत मौखिक रूप मे प्रचलित, परम्परा से चली आने वाली और लोक मे प्रचलित कहानिया लोक-कहानिया कहलाती हैं। लिखी जाने पर भी लोक कहानिया अपने मूल स्वरूप को नही छोडती। कथा सरित्सागर की कहानियो की भूमिका से सिद्ध होता है कि वे कहानिया सुन कर लिखी गई थी। शिव उनके मूल प्रवक्ता माने गये है। कई विद्वानो का मत है कि अपने मौलिक रूप मे ये कहानिया धर्मगाथाए थी परन्तु यह मत आजकल ठीक नही समझा जाता। बहुत से विद्वान् इस तथ्य स सहमत थे कि विश्व भर की लोक कहानियो का मूल स्थान एक था। बेन्फी के अनुसार यह स्थान भारत ही था। अन्य विद्वानो के अनुसार विश्व की अधिकाश कहानियो मे एक-जैसे रूढ तन्तु (अभिप्राय) प्राप्त होते हैं अतएव वे सभी क्षेत्रो मे स्वतत्र रूप से विकसित हो सकती है। लोक-कहानी मे सास्कृतिक सामग्री बहुत होती है और उसमे लोक विश्वासो का भी उल्लेख रहता है। यद्यपि अग्रेजी के फोक टेल (Folk Tale) के अन्तर्गत अवदान लोक कथा, धर्म गाथा, पशु पक्षी की कहानिया, नीति कथाए समाहित हो जाती है तथापि कई बार इस शब्द का पर्याय लोक-कहानी मान लिया जाता है।

लोक गाथा —इस शब्द का निर्माण अग्रेजी क बैलेड (Ballad) शब्द के अभिप्राय को प्रकट करने क लिए किया गया है। वैसे तो बैलेड के लिए हिन्दी म ग्राम-गीत, नृत्य-गीत, आख्यान गीत, आख्यानक-गीत, वीरगाथा, वीर-गीत, वीर-काव्य आदि शब्द प्राप्त होते हैं परन्तु इनमें से कोई भी बैलेड का ठीक और पूर्ण अर्थ व्यक्त नही करता जैसे लोक गाथा म कथा का अश अवश्य रहता है परन्तु सभी लोक-गीता अथवा ग्राम गीतो के लिए कथा तत्त्व आवश्यक नही।

डब्ल्यू० पी० केर के मतानुसार बैलेड वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोक-कण्ठ मे ही उत्पन्न और विकसित होता है या लोक-गाथा के सामान्य रूप विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचित होता है, जिसमे गीतात्मकता (लिरिकल क्वालिटी Lyrical Quality) और कथात्मकता दोनो होती हैं और जिसका प्रचार जन-साधारण मे मौखिक रूप मे एक पीढी से दूसरी पीढी मे होता रहता है। (फार्म एण्ड स्टाइल इन पोइट्री पृष्ठ 3) Form And Style In

Poetry P. 3) जोजेफ टी॰ शिप्ले की (Joseph T Shipley) "डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स" (Dictionary of World Literaray Terms) में बैलेड के तीन अर्थ दिये है—(1) एक लघु कथात्मक और प्रगीतात्मक काव्य का नाम। (2) लघु गीत जो हमारी भावात्मक सत्ता का स्पर्श करता है। (3) जो एकाकी वाद्य सहित या समवेत किसी भी प्रकार का होता है या जो नृत्य के साथ गाया जाता है। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया' बैलेड उस काव्य रूप को कहता है जिसमें सीधे-सादे छन्दो में कोई सीधी, सरल कथा कही गई हो। सब से उपयुक्त परिभाषा डब्ल्यू॰ पी॰ केर की ही प्रतीत होती है।

लोक-गाथा मानव समाज का आदिम साहित्यिक रूप है। कबीलो में रहते हुए मानव की सामाजिक मनोभावना की अभिव्यक्ति सामूहिक नृत्यगीत के रूप में होती थी। पौराणिक पुरुषो तथा देवी-देवताओ से सम्बन्धित आख्यान भी उन नृत्य गीतो के वर्ण्य विषय बन गये। ये ही आख्यानक नृत्यगीत लोकगाथा के प्रारम्भिक रूप थे। समवेत नृत्य गीत (कोरल डास—Choral Dance) का विकास इन सामूहिक नृत्य गीतो से हुआ। इनमे थोडे से विशेषज्ञ व्यक्ति (स्त्री और पुरुष) नृत्य गान करते और अन्य लोग देख कर आनन्द लेते थे। पश्चात् समाज में व्यक्ति भावना का विकास होने पर सगीत, और नृत्य और काव्य एक दूसरे से पृथक्-पृथक् होने आरम्भ हो गए तथा उनके विशेषज्ञ भी समाज के और लोगो से विशिष्ट स्थान रखने लगे। विशिष्ट प्रतिभा और स्मरण शक्ति वाले व्यक्ति नृत्य सगीत और आख्यान मे पृथक्-पृथक् विशेषज्ञता प्राप्त करने लगे। इस प्रकार समवेत नृत्य गीत से ही नृत्य-सगीत और काव्य (गीत और गाथा) का पृथक्-पृथक् कलाओ के रूप में विकास हुआ। इन्ही विशेषज्ञों में कवि, चारण सूत मागधादि पनपे। ऋग्वेद के कुछ सवाद सूक्त और नाराशसी गाथाएं प्राचीनतम लोक-गाथाए मानी जा सकती हैं।

जब समाज अविभक्त और एक इकाई था तब प्रारम्भिक लोक-गाथाओ की उत्पत्ति हुई। अतएव ये गाथाए प्रारम्भ में सारे समाज की सम्पत्ति थी। सभी इन्हे गाते और अपनी ओर से समयानुसार इनमें कुछ जोडते या घटाते रहे। इस प्रकार सतरणशील होने के कारण ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर और एक पीढी से दूसरी पीढी में कण्ठानुकण्ठ यात्रा करते रहे जिससे इनमें पर्याप्त परिवर्तन होते रहते। ये लोक-गाथाए गाने के लिए [illegible] हैं। इनमें से कई नृत्य या वाद्य के साथ गाई जाती है, कइयों का [illegible] गान होता है।

इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विशेषज्ञों के तीन मत हैं (1) लोकनिर्मितवाद (2) व्यक्तिनिर्मित वाद (3) विकासवाद, (1) [illegible] (Communal Authorship) लोक निर्मितवाद के प्रवर्तक [illegible] और [illegible] तथा समर्थक स्टीनपाल टेनब्रिन्क के अनुसार लोकगाथाओं का विकास [illegible]

रहस्यमयी प्रक्रिया से हुआ है तथा उनकी रचना पूरे समाज द्वारा हुई है, वे अपौरुषेय काव्य हैं। (2) इनडिविज्युअल ऑथरशिप (Authorship Individual) के व्याख्याता श्लेगेल, वहलेण्ड, टाल्बो विशप परसी रिस्टन स्काट आदि हैं। ये कहते हैं कि प्रत्येक रचना के पीछे किसी-न-किसी विशेष कवि का हाथ अवश्य होता है, पूरा समाज काव्य रचना नही कर सकता। वे लोग चारण और गायक थे। रचना का निर्माण हो जाने के पश्चात् उस पर पूरे समाज का अधिकार हो जाता था। (3) विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वालो मे से प्रमुख हैं—चाइल्ड, डब्ल्यू० पी० केर, गमियर और एण्ड्रूलैंग्ड। इन के अनुसार लोक-गाथाओ की रचना नही प्रत्युत् उनका विकास हुआ है। अनेकानेक व्यक्तियो के पृथक्-पृथक् प्रयत्नो के फलस्वरूप ये विकसित हुई हैं। जिस प्रकार नदी के प्रवाह मे पत्थर के अनगढ़ टुकडे घिस-घिस कर गोल और सुन्दर आकार धारण कर लेते हैं इसी प्रकार लोक-गाथाए जहां कही से, जिस किसी के द्वारा प्रारम्भ हुई हो, वे लोक-कण्ठ मे युग-युग तक प्रवाहित होकर नित्य नवीन रूप धारण करती रहती हैं। इनका तब तक विकास होता है जब तक कि छप जाने पर इनका रूप स्थिर नही हो जाता।

अपनी पुस्तक "ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स" (Old English Ballads) की भूमिका मे श्री ए० बी० गमियर ने लोक-गाथाओ की निम्नलिखित विशेषताए वर्णित की हैं (1) उनमे विचारो तथा भावो की ऋजुता होती है, स्वाभाविकता उस कोटि की होती है जो हमे केवल प्रारम्भिक मानव समाज मे ही उपलब्ध हो सकती थी। (2) उनमे बौद्धिकता, कल्पनाशीलता तथा श्रमसाध्य कलात्मक पर्याप्त न्यूनमात्रा मे होती है और इनके स्थान पर भावात्मकता, सरल कल्पना (डायरेक्ट विजन-Direct Vision) सहजोच्छ्वास और परम्परा के प्रति अनुराग की भावना अनुपात मे कही अधिक होती है। (3) उनमे यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति अधिक होती है अतएव श्रमसाध्य कलात्मकता का अभाव होता है। आवश्यक भरती की सामग्री और वाग्जाल से विरहित होता है (4) अनिवार्यत वस्तुव्यजक होने के कारण इसमे आत्मव्यजक तत्त्व (सब्जेक्टिव एलीमेंट-Subjective Element) का पूर्णत अभाव होता है। (5) मौखिक तथा सतरणशील होने के कारण इनका निश्चित पाठ नही होता और न इनकी लिखित प्रतियां ही होती हैं। (6) इनमे अस्वाभाविक, रूढ और श्रमसाध्य अलकारो और शब्दो का अभाव होता है। जो भी अलकार प्रयुक्त किये जाते है वे व्यावहारिक जीवन से गृहीत होते हैं। (7) इनमे कुछ विशेष अलकारो-मुहावरो और विशेषणो की आवृत्ति बार-बार होती है। (8) छन्द सीधा-सादा और सरल होता है तथा धुनो पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। (9) इनमे शास्त्रीय सगीत से भिन्न सरल ढग की गयता होती है। (10) इनमे कोई छोटी या बडी कथा अवश्य होती है।

शिक्षा के प्रसार के कारण लोक-गाथाओ के प्रति जनता की रुचि कम होती जाती है। छप जाने के पश्चात् उनका रूप स्थिर हो जाता है। इनके अनुकरण पर लोक कवि नई नई गाथाए लिख कर छपवाने और बाजारो मे बेचने लगते है पर ये कृत्रिम गाथाए है जिन्हे अग्रेजी मे ब्राडसाइड बैलड (Broad Side Ballad) कहा जाता है। हिन्दी भाषा भाषी विभिन्न प्रदेशो मे भिन्न-भिन्न लोक गाथाए पाई जाती है कुछ ऐसी भी है जो विभिन्न प्रदेशो मे रूप-भेदो के साथ मिलती हैं, कुछ विकसित होकर गाथा चक्र और लोक महाकाव्य का रूप धारण कर चुकी हैं जैसे आरहा खण्ड। 'लोहि कायन' 'सोरठी' 'विजयमल', 'भरथरी', 'गोपिचद' और 'कुवर' सिंह आदि अन्य प्रमुख लोक-गाथाए हैं। लोक-कथाओ का विभाजन मोटे तौर पर निम्न ढग से किया जा सकता है —

लोक कथाए

- लोक गाथाए
  - परपरागत
  - पौराणिक
  - धार्मिक
  - वीर
- दत कथाए
  - भूत प्रेत सबधी
  - दैत्यराक्षस स०
  - पशु स०
  - पक्षी स०
  - व्रत स०
  - धर्म स०
  - वृक्ष सैल
  - सरिता स०
  - साधु सत स०
  - कारण मूलक
  - किस्से आदि

महत्ता और उपादेयता —लोक साहित्य मे जनमानस स्पदन करता है, इसमे अकृत्रिम और निश्चित ढग से उसके गूढ से गूढ भावो की अभिव्यक्ति होती है। अनायास भाव से निर्मित ये हृदय के उद्गार अपनी गरिमा से पृथिवी-पुत्रो को सदा से आदोलित करते आए हैं। जन-भाषा मे आवेष्टित ये महान और उदात्त उच्छ्वास परवर्ती कलाकारो, कवियो तथा लेखको के लिए प्रेरणा के स्रोत सिद्ध हुए हैं। डा० शम्भूनाथ सिंह ने अपने शोध निबध "हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास" के चौथे पृष्ठ पर महाकाव्य के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ का अनुमान निम्नलिखित ढग से किया है.

(1) सामूहिक नृत्य गीत (कोरल म्यूजिक ऐंड डान्स Choral Music and Dance)

(2) आख्यानक नृत्यगीत (बैलेड डास Ballad Dance)

(3) आख्यान और गाथा

(4) गाथाचक्र (साइकल आफ बैलेड्स Cycle of Ballads)

(5) प्रारम्भिक महाकाव्य

(6) अलकृत महाकाव्य

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक श्री एन० मैक्नील डिक्सन ने भी अपनी पुस्तक "इंग्लिश एपिक एण्ड हिरोइक पोइट्री" के 27वें पृष्ठ पर कहा है कि प्रारम्भिक महाकाव्य का जो उत्तम और विकसित रूप आज हमें प्राप्त होता है उसके निर्माण में न जाने कितनी लोक गाथाओं और लोक आख्यानों का उपयोग किया गया होगा। [The Epic—a highly developed form of art —could not have come to birth —Save for the cruder poems it took up and transformed, and these were, in turn, more finely wrought than the earliest narrations and lyrics of man in the infancy of Society—N Macheil Dixon English Epic and Heroic Poetry, P 27]

विद्वानों ने विकसनशील महाकाव्यों में पाई जाने वाली सामग्री को इन स्रोतों से संकलित हुआ माना है (1) पौराणिक विश्वास (मिथ Myth)। (2) निजंधरी आख्यान (लीजेण्ड Legend) (3) एतिह्य और वंशानुक्रम। (4) समसामयिक घटनाएं (ईवेन्ट्स Events)। (5) प्राचीन ज्ञान भण्डार। (6) लोक गाथा और लोक कथा। डा० एस० के० डे का भी मत है कि यम-यमी पुरुरवोर्वशी, अगस्त्य लोपमुद्रा सरमापणीस आदि ऋग्वेद के ये संवाद-सूक्त वस्तुत पौराणिक और निजंधरी आख्यान हैं। (एस० एन० दास गुप्त एण्ड एस० के० डे ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 43,—43 कलकत्ता 1947—S N Gupta Das and S K Des—A History of Sanskrit Literature p 43, 43 Calcutta 1947) यास्क ने भी निरुक्त में पुरुरवोर्वशी को संवाद और सरमा-प्रणीस की कथा को आख्यान कहा है (निरुक्त 11-15) वाल्मीकि द्वारा लिखे जाने से पूर्व रामायण की रामकथा भी नाराशंसी गाथा या इतिहास के पुराण के रूप में विद्यमान थी। महाभारत से हरिवंश का निम्न श्लोक इस बात की पुष्टि करता है कि पुराणविद लोग राम की गाथा को गाया करते थे।

गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जना।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्य तस्य धीमत ॥

हरिवंश पर्व (हरि 41/149)

महाभारत के विषय में तो सब विद्वान् प्राय सहमत हैं कि इसमें लोक गाथाओं लोक-कथाओं तथा लोक-साहित्य की अन्य विधाओं का पर्याप्त मिश्रण है। इसी प्रकार कई विद्वान् नाटकों की उत्पत्ति वेद के संवाद सूक्तों से मानते हैं। श्रोडर का मत है कि वैदिक काल के पूर्व नृत्य गीत और वाद्य का जो संयोग नृत्यगीतों में दिखाई देता है, उसी से वैदिक ऋषि प्रभावित हुए और उनके मंत्रों में संवाद रूप से गायन और नर्तन का समावेश हुआ। वैदिक सोमयज्ञ में सोम क्रेता और विक्रेता के रूप में ऋत्विज आते थे और अभिनय करते थे। धीरे धीरे उसी से

नाटकों का विकास हुआ होगा।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हमारे साहित्य के मुख्य-मुख्य काव्य रूपों को लोक-साहित्य ने पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। वेद, रामायण, महाभारत पुराण आदि सभी लोक साहित्य के ऋणी हैं। रामायण तथा महाभारत ने हिन्दी साहित्य तथा अन्य भारतीय साहित्यों को कहा तक और कितनी मात्रा में अनुप्राणित किया है इसके विषय में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का निम्न मन्तव्य द्रष्टव्य है और लोक-साहित्य की प्रकारान्तर से महत्ता सिद्ध करता है। "परवर्ती भारतीय साहित्य को इन दो ग्रन्थों ने कितना प्रभावित किया है, इसका अन्दाजा इसीसे लगाया जा सकता है कि यदि समूचे भारतीय साहित्य का विश्लेषण किया जाये तो अधिकांश शायद 90 प्रतिशत रचनाएं इन्हीं दो ग्रंथों के आधार पर हुई हैं, और आज हो रही हैं।"

(संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा-आलोचना अंक 1—1951)

लोक-साहित्य का अध्ययन लगभग पिछले चालीस वर्षों से द्रुतगति से हो रहा है। अवधी, ब्रज मैथिली भोजपुरी, बघेली, बुंदेलखंडी निमाडी, मालवी राजस्थानी, गढ़वाली, कौरवी, हरियानवी बागडी, डोगरी, बंगाली उड़िया, असमिया, पंजाबी, काश्मीरी, गुजराती, मराठी तामिल, तेलुगु आदि का साहित्य सम्बन्धी कृतियों का प्रकाशन हुआ है। इसके तुलनात्मक अध्ययन से एक तथ्य जो ज्वलंत रूप से हमारे समक्ष प्रकट होता है वह यह कि भारत का लोकमानस एक और अखण्ड है। अपने-अपने संकुचित स्वार्थों और दृष्टिकोणों के कारण हम भले ही देश को छोटे-छोटे टुकड़ों में बोलियों के आधार पर चाहे बांट लें परन्तु हम उसकी सांस्कृतिक एकता को छिन्न-भिन्न नहीं कर सकते। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि भारतीय लोक-साहित्य की मध्य बिन्दु भारतीय नारी है—चाहे वह पंजाब निवासिनी हो चाहे बंगालिन हो चाहे मद्रासिन हो। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में हम कह सकते हैं "भले ही आकाश के खंड हो सकें, किंतु भारतीय स्त्री का हृदय जिन आदर्शों और भावनाओं से प्रतिपादित हुआ है उनका बटवारा नहीं हो सकता। भारतीय स्त्री ही अधिकांश लोक-गीतों की कवियत्री नायिका है। उस मंगल्यानी गंवारिन के सुरीले कंठ का अमृतध्वनि गीतों के रूप में मूर्त है। इस मंगलमयी गीत कारिणी की भाषा के अनेक रूप हैं, किन्तु उनमें छिपे हुए अर्थों का रूप एक है।" (कमाऊं का लोक साहित्य—डा० त्रिलोचन पांडेय पृ० 3) इसी तथ्य की व्याख्या करते हुए डाक्टर साहिब इसी पुस्तक के पृ० 3 ए पर कहते हैं, "लोक संस्कृति का यह स्वभाव है कि वह किसी मान्यता को विस्मृत नहीं करती या एक बार स्वीकृत किये हुए तथ्य को खोती नहीं (जैसे वैदिक साहित्य में समस्त भुवनों में व्याप्त दूर तक जो यक्ष कहा गया है। इसी भावना के अवशेष के रूप के यक्षों की पूजा काश्मीर से केरल और असम से सौराष्ट्र तक आज भी प्रचलित

है) । जैसे गंगा की बाढ में एक के ऊपर एक मिट्टी की या बालू की तहें जम जाती हैं वैसे ही लोकवार्त्ता की रीति है । जैसे केले के भीतरी गाभे को उसके बाहरी परत घेर लेती है, किन्तु उन सबके भीतर जीवन का एक ही रस भरा रहता है वही सबको सींचता है । दुर्भाग्य से आज मेल की अपेक्षा भेद या बटवारे की प्रवृत्ति अधिक बलवती है । निषाद, नाग, यक्ष आर्य, रक्ष किन्नर आदि संस्कृतियों के तत्त्वों की बात जब शास्त्रीय ढंग से भी कही जाती है तो उसमें आपसी भेद के बीज जड़ पकड़ लेते हैं, मानो यक्ष और आर्यों में अथवा आर्य और निषादों में अथवा निषादों में अथवा निषाद और किरातों में कोई भारी वैमनस्य और कलह हो और उसका उत्तराधिकार अपने ऊपर ओढ़ कर हम में फूट का भाव उत्पन्न करते हों ।'

स्पष्ट है कि भारतीय लोक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हमारे भारतीय समाज की भावनात्मक एकता का एकमात्र साधन है क्योंकि यह साहित्य हमें देश की अखण्डता का संदेश देता है तथा कुत्सित भेद भाव को निराकरण करता है । यह साहित्य हमारी अतीव महान् उपलब्धि है क्योंकि इसने युग-युग से हमारे भीतर एकता की भावना का संचार किया है जिसको हम विस्मृत कर चुके हैं । इस साहित्य को नष्ट होने देना राष्ट्र के प्रति महान अपराध होगा ।

6
भारतीय समीक्षा पद्धति—प्रमुख उपलब्धियां

काव्य के सौन्दर्य का उन्मीलन करने तथा उसके गुण दोषों को परखने के लिए अपनाई गई पद्धति का सबसे प्राचीन नाम काव्य क्रिया-कल्प था जैसाकि वाल्मीकि रामायण, वात्स्यायन एवं दण्डी के साक्ष्य से प्रतीत होता है। काव्य मे अलंकारो की सर्वाधिक महत्व प्रतिष्ठा के फलस्वरूप इस पद्धति का नाम अलंकार शास्त्र पडा। इसीलिए अधिकांश ग्रन्थो का नाम काव्यालंकार, काव्यालंकार सार-संग्रह रखा गया क्योंकि रस, ध्वनि गुण आदि विषयों के प्रतिपादक होने पर भी इनमें अलंकारो की प्रमुखता स्वीकार की गई थी। मध्य युग मे इसका अन्य अभिधान 'साहित्य-शास्त्र' भी प्रचलित हुआ। राजशेखर ने काव्य मीमांसा मे 'पंचमी साहित्य विद्या इति या यावरीय' लिखकर इस अभिधान का प्रवर्तन किया। पश्चात् 'रूपक' तथा 'विश्वनाथ' ने अपने ग्रन्थो को 'साहित्य मीमांसा' तथा 'साहित्य दर्पण' अभिहित कर इस नाम को अधिक लोकप्रिय एवं व्यापक बनाया। समीक्षा एवं आलोचना या समालोचना शब्द अपेक्षाकृत आधुनिक हैं अत आजकल इनका प्रयोग अधिक किया जाता है। हम भी इसी नाम से अर्थात् समीक्षाशास्त्र से इसे अभिहित करेंगे।

समीक्षाशास्त्र का उदय काल विस्मृति के गर्त मे समाया हुआ है। केवल राजशेखर ने अपनी कृति 'काव्य मीमांसा' मे इसके सृजन-काल का वर्णन किया है। वे लिखते हैं,"'काव्य मीमांसा का प्रथम उपदेश भगवान श्री कृष्ण ने ब्रह्मा, विष्णु आदि अपने चौसठ (64) शिष्यो को दिया। स्वयम्भू ब्रह्मा जी ने भी अपने मानस-जन्मा विद्यार्थियो को इस शास्त्र का उपदेश दिया। इन्हीं मे सबसे वन्द-नीय सर्वशास्त्रवेत्ता थे सरस्वती के पुत्र सारस्वतेय काव्यपुरुष। प्रजापति ने इन्हीं काव्य पुरुष को काव्य-विद्या की प्रवर्तना के लिए नियुक्त किया। काव्य-पुरुष ने काव्य विद्या को अठारह अधिकरणो मे बांट कर अठारह शिष्यों को पृथक्-पृथक् पढाया। उन शिष्यो मे प्रमुख थे—भरत, नन्दिकेश्वर, सुवर्णनाभ आदि।

है) । जैसे गगा की बाढ मे एक के ऊपर एक मिट्टी की या बालू की तहें जम जाती हैं वैसे ही लोकवार्त्ता की रीति है । जैसे केले के भीतरी गाभे को उसके बाहरी परत घेर लेती हैं, किन्तु उन सबके भीतर जीवन का एक ही रस भरा रहता है, वही सबको सीचता है ।· ·····दुर्भाग्य से आज मेल की अपेक्षा भेद या बटवारे की प्रवृत्ति अधिक बलवती है । निषाद, नाग, यक्ष आर्य, रक्ष किन्नर आदि सस्कृतियो के तत्त्वो की बात जब शास्त्रीय ढग से भी कही जाती है तो उससे आपसी भेद के बीज जड पकड लेते हैं, मानो यक्ष और आर्यों मे अथवा आर्य और निषादो मे अथवा निषादो मे अथवा निषाद और किरातो मे कोई भारी वैमनस्य और कलह हो और उसका उत्तराद्धंकार अपने ऊपर ओढ कर हम मे फूट का भाव उत्पन्न करते हो ।"

स्पष्ट है कि भारतीय लोक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हमारे भारतीय समाज की भावनात्मक एकता का एकमात्र साधन है क्योकि यह साहित्य हमे देश की अखण्डता का सदेश देता है तथा कुत्सित भेद भाव को निराकरण करता है । यह साहित्य हमारी अतीव महार्घ उपलब्धि है क्योंकि इसने युग-युग से हमारे भीतर एकता की भावना का सचार किया है जिसको हम विस्मृत कर चुके हैं । *इस साहित्य को नष्ट होने देना राष्ट्र के प्रति महान अपराध होगा ।*

6

भारतीय समीक्षा पद्धति—प्रमुख उपलब्धियां

काव्य के सौन्दर्य का उन्मीलन करने तथा उसके गुण दोषों को परखने के लिए अपनाई गई पद्धति का सबसे प्राचीन नाम काव्य क्रिया-कल्प था जैसाकि वाल्मीकि रामायण, वात्स्यायन एवं दण्डी के साक्ष्य से प्रतीत होता है। काव्य में अलंकारों की सर्वाधिक महत्त्व प्रतिष्ठा के फलस्वरूप इस पद्धति का नाम अलंकार शास्त्र पड़ा। इसीलिए अधिकांश ग्रन्थों का नाम काव्यालंकार, काव्यालंकार सार-संग्रह रखा गया क्योंकि रस, ध्वनि, गुण आदि विषयों के प्रतिपादक होने पर भी उनमें अलंकारों की प्रमुखता स्वीकार की गई थी। मध्य युग में इसका अन्य अभिधान 'साहित्य-शास्त्र' भी प्रचलित हुआ। राजशेखर ने काव्य मीमांसा में 'पंचमी साहित्य विद्या इति या यावरीय' लिखकर इस अभिधान का प्रवर्तन किया। पश्चात् 'रूपक' तथा 'विश्वनाथ' ने अपने ग्रन्थों को 'साहित्य मीमांसा' तथा 'साहित्य दर्पण' अभिहित कर इस नाम को अधिक लोकप्रिय एवं व्यापक बनाया। समीक्षा एवं आलोचना या समालोचना शब्द अपेक्षाकृत आधुनिक हैं अतः आजकल इनका प्रयोग अधिक किया जाता है। हम भी इसी नाम से अर्थात् समीक्षाशास्त्र से इसे अभिहित करेंगे।

समीक्षाशास्त्र का उदय-काल विस्मृति के गर्त में समाया हुआ है। केवल राजशेखर ने अपनी कृति 'काव्य मीमांसा' में इसके सृजन-काल का वर्णन किया है। वे लिखते हैं,"'काव्य मीमांसा का प्रथम उपदेश भगवान श्री कृष्ण ने ब्रह्मा, विष्णु आदि अपने चौंसठ (64) शिष्यों को दिया। स्वयम्भू ब्रह्मा जी ने भी अपने मानस-जन्मा विद्यार्थियों को इस शास्त्र का उपदेश दिया। इन्हीं में सबसे वन्दनीय सर्वशास्त्रवेत्ता थे सरस्वती के पुत्र सारस्वतेय काव्यपुरुष। प्रजापति ने इन्हीं काव्य पुरुष को काव्य विद्या की प्रवर्तना के लिए नियुक्त किया। काव्य-पुरुष ने काव्य-विद्या को अठारह अधिकरणों में बांट कर अठारह शिष्यों को पृथक्-पृथक् पढ़ाया। उन शिष्यों में प्रमुख थे—भरत, नन्दिकेश्वर, सुवर्णनाभ आदि।

यद्यपि वैदिक साहित्य में इस शास्त्र का कहीं भी वर्णन प्राप्त नहीं होता एवं न वेद के षड्गो में ही इसकी चर्चा है तथापि इस शास्त्र के मूलभूत अलकार उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हमे वैदिक सहिताओ तथा उपनिषदो में प्राप्त होते है। उपमा की शास्त्रीय कल्पना सर्वप्रथम गार्ग्य ने प्रस्तुत की। तत्पश्चात् निरुक्तकार यास्क ने उपमा के द्योतक बारह निपातों अर्थात् अव्ययो तथा उपमा के अनेक भेदो का वर्णन किया। ये भेद है (1) कर्मोपमा (2) भूतोपमा (3) रूपोपमा (4) सिद्धोपमा (5) अर्थोपमा या लुप्तोपमा। इस विभाजन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसा से कई शताब्दियां पूर्व यास्क के समय में अलकार का शास्त्रीय विवेचन आरम्भ हो चुका था।

रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि न केवल सस्कृत साहित्य के आदि कवि है प्रत्युत् वे आदिम आलोचक भी हैं। कारयित्रीजी एव भावयित्री दोनो प्रतिभाओ के वे सगम स्थल थे। व्याघ्र के वाण से बिंधे क्रोंच के लिए विलाप कर रही क्रोंची के करुण क्रन्दन से विह्वल महर्षि वाल्मीकि का मानस कविता में फूट पड़ा। उनका यह प्रसिद्ध श्लोक 'मा निषाद' कारयित्री प्रतिभा का वरदान था। उनकी भावयित्री प्रतिभा ने शोक के साथ 'श्लोक' का समीकरण करते हुए शोक श्लोकत्वमागत' आलोचित किया। महर्षि की सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा का यह ज्वलन्त प्रमाण है कि युग युगान्तरों के पश्चात् भी कविता के मूल स्रोत के सम्बन्ध म उनके ही शब्दो की ध्वनि पत की इस पक्ति मे (वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान तथा अग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ (Wordsworth) की इस पक्ति Poetry is the Spontaneous overflow of powerful feelings देश देशान्तरो म गुजायमान हो रही है। स्पष्ट है कि जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण को उपजीव्य मान कर परवर्ती कवियो ने महाकाव्य लिखन की प्रेरणा प्राप्त की उसी प्रकार साहित्य शास्त्रियो ने भी काव्य स्वरूप का सकेत इसी आदिम महाकाव्य से ग्रहण किया।

यद्यपि अनेक अलकार शास्त्रियो के नामो का वर्णन परवर्ती ग्रन्थो में मिलता है तथापि उनकी कृतियां अभी तक अनुपलब्ध हैं। सबसे प्राचीन रचना भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ही है जो विद्यमान है और जिसमे अलकार शास्त्र स सम्बद्ध चार अलकार दस गुण एव दस दोषो का वर्णन सोलहवें अध्याय मे किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अलकार शास्त्र पहले नाट्यशास्त्र के सहायक शास्त्र के रूप में वर्णित किया जाता था। नाट्य का आदि ग्रन्थ होने पर भी इसे अलंकार शास्त्र का विश्व कोष माना जा सकता है क्योकि परवर्ती समीक्षा शास्त्रियो ने इस को आधार बनाकर अपने अपने सिद्धान्तो की स्थापना की।

आज तक प्राप्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम भामह को ही अलकार शास्त्र को स्वतन्त्र शास्त्र के रूप म वर्णित करने का श्रेय

प्राप्त है। पूर्ववर्ती आचार्य मेधावीरुद्र, काश्यप, वर रुचि, ब्रह्मदत्त तथा नन्दि-स्वामी दण्डी निस्सन्देह भामह के पूर्ववर्ती आलंकारिक थे परन्तु इनके ग्रन्थों तथा मतों से हम आज नितान्त अपरिचित हैं। भामह के पश्चात् साहित्य शास्त्रियों की लम्बी परंपरा का सूत्रपात होता है जिसका अवसान नरसिंह कवि की कृति 'नञ्जराज यशोभूषण' के साथ अठारहवीं शती में हुआ। इसे लगभग पन्द्रह सौ वर्ष के साहित्य शास्त्र के इतिहास को हम चार भागों में इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं।

1. प्रारम्भिक काल—अज्ञात काल से भामह तक।
2. रचनाकाल —भामह से आनन्दवर्धन तक समय (400 से 820 ई० तक)

इस काल में ही काव्य की आत्मा का प्रतिपादन करने वाले भिन्न-भिन्न प्रमुख सम्प्रदायों का अवतरण हुआ जैसे :—

(क) अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं पोषक भामह, उद्भट तथा रुद्रट।
(ख) रीति सम्प्रदाय के दण्डी तथा वामन।
(ग) रस सम्प्रदाय से सम्बद्ध लोल्लट शंकुक, भट्टनायक।
(घ) ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आनन्दवर्धन।

3 निर्णयात्मक काल—आनन्दवर्धन से मम्मट तक (समय 850 से 1050 ई० तक।)

(क) अभिनव गुप्त (ख) कुन्तक (ग) महिम भट्ट (घ) रुद्रभट्ट (ङ) धनजय (च) भोजराज—इस काल के प्रमुख साहित्य शास्त्री थे।

4 व्याख्या काल—मम्मट से पण्डितराज जगन्नाथ तक (समय 1050 से 1750 ई० तक)।

इस काल के प्रमुख साहित्य शास्त्री हैं—मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, हेमचन्द्र, विद्याधर, विद्यानाथ, जयदेव, अप्पय दीक्षित, शारदातनय, शिंगभूपाल, भानुदत्त, रूप गोस्वामी राजशेखर, क्षेमेन्द्र, अमरचन्द्र देवेश्वर, पण्डितराज जगन्नाथ एवं विश्वेश्वर भट्ट।

इन आचार्यों के ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस दीर्घकाल में कई सम्प्रदाय बने, विकसित हुए तथा समाप्त प्राय हो गए। इन सम्प्रदायों के आविर्भाव के कारण इन प्रश्नों के उत्तर थे कि काव्य की आत्मा क्या है? वह कौन-सी वस्तु है जिसकी सत्ता रहने पर काव्य में काव्यत्व विद्यमान रहता है? वह कौन-सा पदार्थ है जो काव्य के अंगों में सबसे अधिक उपादेय तथा महत्वपूर्ण है?

अलंकारसर्वस्व के 'टीकाकार समुद्रबन्ध' द्वारा प्रदत्त इन सम्प्रदायों के उदय का कारण, भी अवेक्षणीय है। वे कहते हैं कि विशिष्ट शब्द तथा अर्थ मिलकर ही

काव्य होते हैं। शब्द तथा अर्थ की विशिष्टता तीन प्रकार से सम्भव हो सकती है (1) धर्म से, (2) व्यापार से (3) व्यंग्य से। धर्म दो प्रकार के होते हैं। (i) नित्य तथा (ii) अनित्य। अनित्य धर्म की सत्ता काव्य में उतनी अपेक्षित नहीं रहती जितनी नित्य धर्म की। अनित्य धर्म है अलंकार तथा नित्य धर्म का नाम है गुण। इस प्रकार धर्ममूलक वैशिष्ट्य प्रतिपादन करने वाले दो सम्प्रदाय हुए अलंकार एवं गुण या रीति। व्यापारमूलक वैशिष्ट्य भी दो प्रकार का है— वक्रोक्ति तथा भोजकत्व। वक्रोक्ति द्वारा काव्य में चमत्कार मानने वाले आचार्य कुन्तक हैं। भोजकत्व व्यापार की कल्पना इस निरूपण के सन्दर्भ में भट्ट नायक ने की अतः इसे भरत के रस सम्प्रदाय का अंग मानना ही युक्तियुक्त है। व्यंग्य मुख से शब्दार्थ में वैशिष्ट्य मानने वाले आचार्य आनन्दवर्धन हैं। जिन्होंने ध्वनि को उत्तम काव्य स्वीकार किया। आचार्य समुद्रबन्ध द्वारा वर्णित सम्प्रदायों में रस तथा औचित्य सम्मिलित करने पर समीक्षाशास्त्र में छः सम्प्रदाय परिगणित किए जा सकते हैं (1) रस सम्प्रदाय, (2) अलंकार सम्प्रदाय, (3) रीति सम्प्रदाय, (4) वक्रोक्ति सम्प्रदाय, (5) ध्वनि सम्प्रदाय, (6) औचित्य संप्रदाय।

उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि रस-सिद्धान्त का प्रथम निरूपण भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में किया अतः वे ही रस सम्प्रदाय के सबसे आदि तथा सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं। उनका प्रमुख उद्देश्य नाट्य का विवेचन था इसलिए उनका प्रतिपाद्य नाट्य विषयक रस ही है। उनकी यह स्थापना कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है "विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद् रस निष्पत्ति —" रस सम्प्रदाय का मूलभूत सूत्र बना। इस सूत्र की व्याख्या टीकाकारों ने विभिन्न दृष्टियों से की। इस संबंध में भट्ट लोलट्ट, भट्ट नायक तथा अभिनवगुप्त के मत विशेष प्रसिद्ध हैं। भट्ट लोल्लट का मत उत्पत्तिवाद कहलाता है क्योंकि उनके अनुसार निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति है। मुख्य वृत्ति से रस नाटक के अनुकार्य राम सीता में उत्पन्न होता है। परन्तु उन्हीं के रूप का अनुसंधान करने वाले नटादिकों को भी रस की प्रतीति होती है। शंकुक ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा कि 'संयोगात्' शब्द का अर्थ है 'अनुमानाद्' अर्थात् अनुमान से तथा निष्पत्ति का अर्थ है अनुमिति। यह अनुमिति नैयायिक अनुमान से भिन्न चित्रतुरंग-न्याय पर आधृत है। इस स्थापना के विरोध में भट्ट नायक ने भुक्तिवाद सिद्धान्त की सर्जना की। उनके अनुसार रस की न तो उत्पत्ति होती है एवम् न प्रतीति प्रत्युत् भोजकत्व व्यापार के द्वारा दर्शक रस का भोग करता है। इनके अनुसार संयोग का अर्थ है भोज्य-भोजक या भाव्य भावक संबंध तथा निष्पत्ति का अर्थ है भुक्ति। अभिधा के द्वारा शब्द अर्थ की प्रतीति कराता है। भावकत्व व्यापार के बल पर नाट्य में अभिनीत व्यक्ति अपने

ऐतिहासिक तथा व्यक्तिगत रूप को छोड़कर सामान्य पुरुष के रूप में ही ग्रहण किया जाता है। इस प्रक्रिया को उन्होंने साधारणीकरण कहा है। अभिनव गुप्त ने पूर्ववर्ती सभी मतों का खण्डन करते हुए निर्दिष्ट किया कि संयोग का अर्थ है व्यंग्यव्यंजक भाव तथा रस निष्पत्ति का अर्थ है रस की अभिव्यक्ति या रस की व्यंजना। उनके अनुरूप प्रत्येक श्रोता या दर्शक में स्थायी भाव-प्रेम, शोक, क्रोधादि-वासना रूप में विद्यमान रहते हैं। यह वासना पूर्व जन्म के संस्कारों से उत्पन्न होती है या इसी जन्म में काव्यादि सेवन से प्रादुर्भूत होती है। विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के द्वारा इस स्थायीभाव की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे ही जैसे नए घड़े में पानी के सम्पर्क से पहले से विद्यमान भीनी सुगंध निसृत होती है।

ध्वनिवादी आचार्यों ने भी वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि एवं रस ध्वनि में से रसध्वनि को सर्वश्रेष्ठ माना। भोजराज ने समस्त वाङ्मय को तीन भागों में बांटकर स्वभावोक्ति वक्रोक्ति एवं रसोक्ति में से रसोक्ति को ही काव्य में मुख्य माना। आचार्य विश्वनाथ ने "वाक्य रसात्मकं काव्यम्" रस युक्त वाक्य ही काव्य है कह कर रस की महत्ता स्थापित की। रुद्रभट्ट ने भी विश्वनाथ का अनुसरण किया। अग्निपुराणकार तथा राजशेखर को भी यह मत स्वीकार्य था।

अलंकार सम्प्रदाय के अन्तर्गत वे लेखक आते हैं जिन्होंने रस तथा ध्वनि सिद्धान्तों की स्थापना के पूर्व या पश्चात् 'अलंकार' को ही काव्य की उत्कृष्टता का प्रमुख साधन माना है। भामह के अनुसार अलंकार ही काव्य का अनिवार्य प्राण तत्व है। उनका मन्तव्य है कि सुन्दर होने पर भी रमणी के मुख पर भूषण के बिना जिस प्रकार आभा नहीं आती, उसी प्रकार नितान्त प्रकृत रूप से वाणी में चारुता नहीं आती, अतः वाणी की अलङ्कृति के लिए वक्राभिधेय शब्दोक्ति आवश्यक है। पीयूषवर्ण जयदेव ने 'चन्द्रालोक' में अलंकार की महत्ता बड़े जोरदार शब्दों में घोषित करते हुए कहा है कि जो विद्वान अलंकार से हीन शब्द और अर्थ को काव्य मानता है वह अग्नि को शीतल क्यों नहीं मानता। अलंकार हीन काव्य एवं शीतल अग्नि एक ही प्रकार की वस्तुएं हैं जिसे केवल पागल ही सत्य मान सकता है। ये विद्वान रस तत्व को अलंकार का ही एक रूप मानते थे।

रीति सम्प्रदाय के अंतर्गत वे आचार्य सम्मिलित किए जाते हैं जो काव्य के अन्तर्गत रीति के महत्व को स्वीकार करते हैं या जिन्होंने अपने शास्त्रीय ग्रन्थों में रीति की विवेचना की है। रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक वामन ने सर्वप्रथम घोषित किया कि रीति काव्य की आत्मा है—'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति की परिभाषा देते हुए वामन लिखते हैं "पदों की विशिष्ट रचना ही रीति है।" 'विशेषा गुणात्मा' कह कर उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि रीति गुणों के ऊपर अवलंबित है क्योंकि पदों में वैशिष्ट्य गुणों के कारण ही उत्पन्न होता है। इसीलिए रीति सम्प्रदाय गुण सम्प्रदाय के नाम से भी स्मरण किया जाता है। वामन ने वैदर्भी, गौड़ी तथा

पाचाली तीन रीतिया मानी हैं।

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को साधारणअलकार की पदवी से उठाकर काव्य की आत्मा के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हुए घोषित किया कि वक्रोक्ति काव्य का जीवन है 'वक्रोक्ति काव्यस्यजीवितम्'वक्रोक्ति की व्याख्या करते हुए वे लिखते है कि वक्रोक्ति केवल वाक् चातुर्य या उक्ति चमत्कार नही है, वह कवि व्यापार या कवि कौशल है। उन्होने इसक अन्तर्गत सभी प्रचलित काव्य सिद्धान्तो का समाहार किया एव साथ ही सभी काव्यागो-वर्ण-चमत्कार, शब्द सौन्दर्य, विषय वस्तु की रमणीयता, अप्रस्तुत विधान; एव प्रबन्ध कल्पना को उचित स्थान दिया।

कुछ आलोचको के अनुसार ध्वनि सम्प्रदाय सस्कृत काव्यशास्त्र का सबसे प्रमुख एव प्रौढ सम्प्रदाय है जिसका प्रवर्तन आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रथ ध्वन्यालोक द्वारा किया। ध्वनि की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं, "जहा अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस (प्रतीयमान) को अभिव्यक्त करते है उस काव्य विशेष को विद्वान लोग ध्वनि (काव्य) कहते हैं।" प्रत्येक व्यग्यार्थ रूप को काव्य नही कहा जा सकता, चमत्कारी व्यग्य ही काव्य के रूप मे आदर पा सकता है। महाकवियो की वाणी मे यह चमत्कारी व्यग्य अर्थ एक विलक्षण अर्थ ही हुआ करता है—रमणियो के लावण्य के समान केवल सहृदयो द्वारा मनोगत किया जा सकता है। शाब्दिक परिभाषा द्वारा उसे बाध सकना सम्भव नही। इसी से यह कुछ और ही है (अन्यत् एव) आदि शब्दो द्वारा इसकी महत्ता व्यजित की गई है। ध्वनि के सबसे प्रमुख एव महत्वपूर्ण भेद चार हैं (1) अर्थान्तर सक्रमित (2) अत्यन्त तिरस्कृत (3) असलक्ष्य (4) सलक्ष्य।

सस्कृत साहित्य शास्त्र का अन्तिम महत्वपूर्ण सम्प्रदाय क्षेमेन्द्र द्वारा प्रवर्तित औचित्य सम्प्रदाय है। औचित की व्याख्या करते हुए क्षेमेन्द्र कहते है कि उचित का जो भाव है वह औचित्य कहलाता है। जो वस्तु जिसके सदृश हो, जिससे उसका मल मिले उस कहते है उचित तथा उचित का ही भाव होता है औचित्य। यह औचित्य ही रस का जीवित भूत है, प्राण है तथा काव्य मे चमत्कारी है।

ये छह सम्प्रदाय ही भारतीय समीक्षा पद्धति की प्रमुख उपलब्धिया हैं। आधुनिक आलोचक—महावीरप्रसाद द्विवेदी से लेकर डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तक इन्ही सम्प्रदायो के मूलभूत सिद्धान्तो को आधार बना कर आलोच्य कृतियो का मूल्याकन करने मे प्रवृत्त होते हैं। डेढ सहस्र वर्ष से लेकर लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व के निरूपित ये सिद्धान आज के युग मे भी उतने ही सार्थक हैं जितने वे अपने निर्माण कालमें थे—यह एक विस्मय कारक तथ्य है।

□□